मंगल विमर्श

वादे वादे जायते तत्त्वबोधः

वर्ष 1, अंक 3, जुलाई-2015
आषाढ़, वि. सं. 2072, ₹50

त्रैमासिक

अंदर के पृष्ठों पर

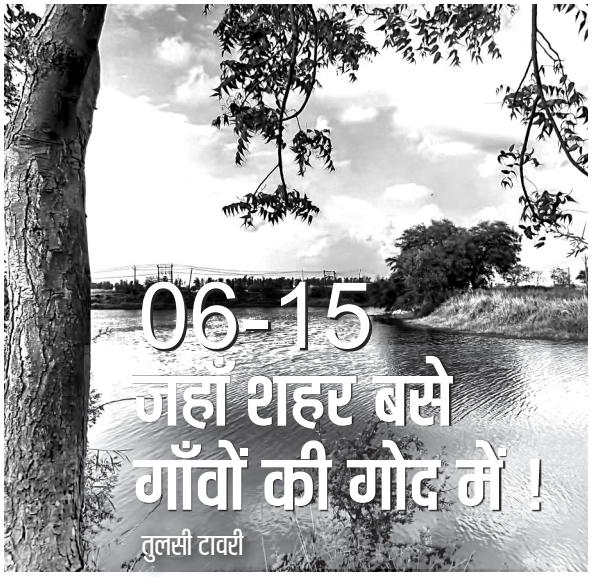

06-15
जहाँ शहर बसे गाँवों की गोद में !
तुलसी टावरी

16-19
पर्यावरण और सांस्कृतिक चेतना
डॉ. विनोद बब्बर

20-25
क्यों जानलेवा हुए हवा और पानी
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

26-28
अंतरिक्ष में जल की खोज
डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल

29-33
सबको स्वास्थ्य कैसे पहुँचें लक्ष्य तक
डॉ. ज्योत्स्ना

36-45
लोकायत और मार्क्सवाद
डॉ. प्रमोदकुमार दुबे

46-51
मीरा के काव्य पर संत मत का प्रभाव
ओमीश परुथी

52-61
खाप पंचायतें ऐतिहासिक संदर्भ
बनवारी

काव्य किंजल

34-35
1. क्षरण ही क्षरण बंधु !
2. तिनके-सा उड़ता स्वस्तिक
डॉ. रामसनेही लाल वर्मा
3. संस्कृति का सूरज
डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंगलाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संपादक
सुनील पांडेय

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

प्रकाशक एवं मुद्रक आदर्श गुप्ता द्वारा मंगल सृष्टि, सी-84, अहिंसा विहार, सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली-110085 के लिए प्रकाशित एवं एक्सेल प्रिंट, सी-36, एफ एफ कॉम्पलेक्स, झंडेवाला, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

RNI
DELHIN/2015/59919
ISSN
2394-9929
ISBN
978-81-930883-1-9

फोन नं.
+91-9811166215
+91-11-27565018
ई-मेल
mangalvimarsh@gmail.com
वेब साइट
www.mangalvimarsh.in

मंगल विमर्श पत्रिका में व्यक्त विचारों के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी हैं। संपादक, मुद्रक व प्रकाशक का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

सभी विवादों का न्याय क्षेत्र केवल दिल्ली होगा।

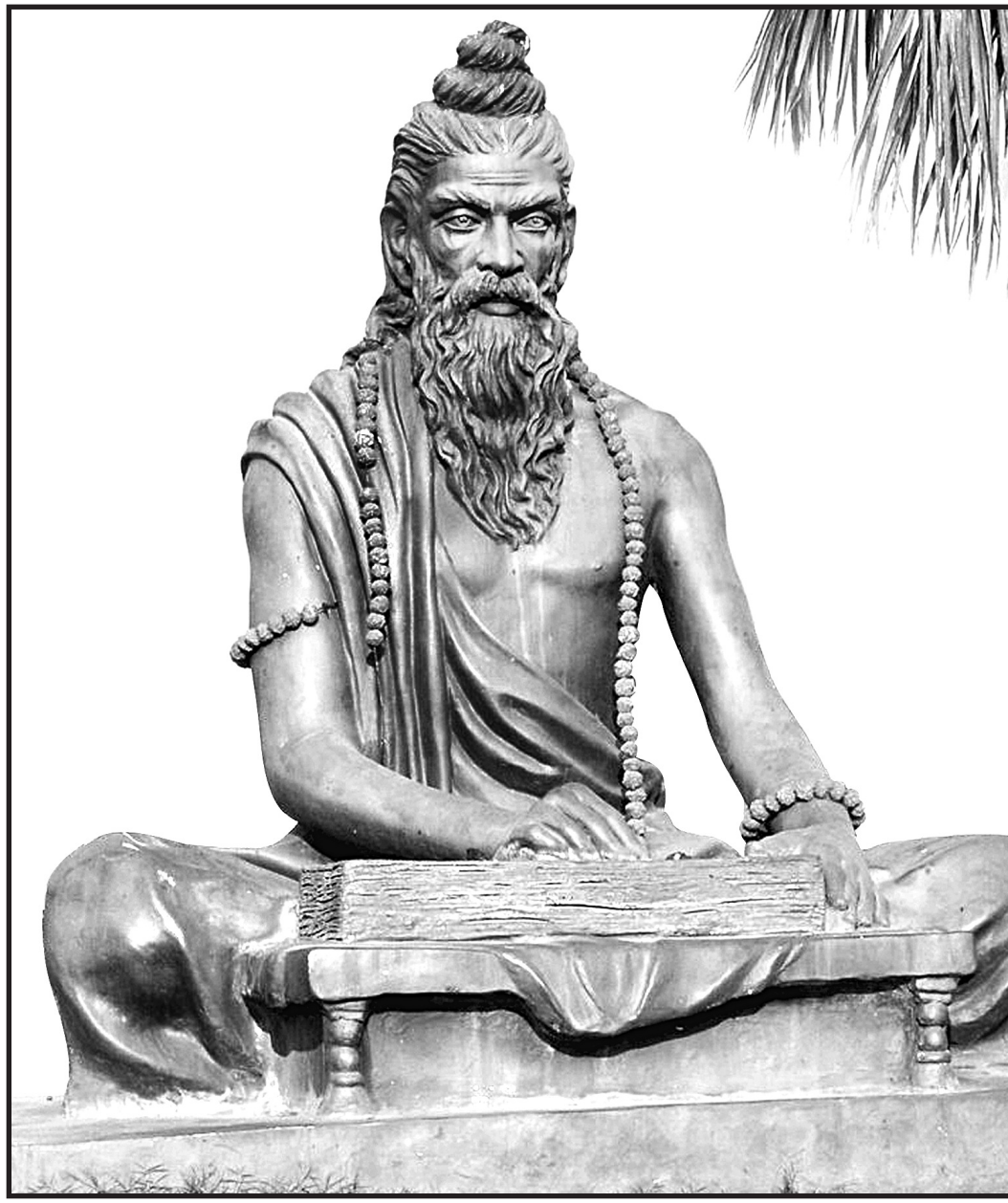

योगः चित्त-वृत्ति निरोधः

महर्षि पतंजलि

अथ

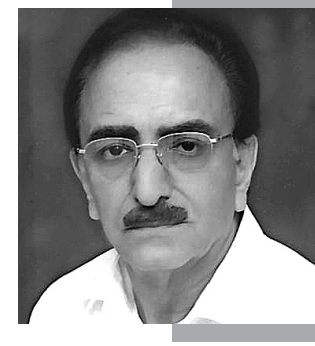

ओमीश परुथी
एसोसिएट प्रोफेसर (से.नि.)
प्रधान संपादक

सहस्त्रों वर्ष पूर्व भारत-भू पर योग की जो पावन व प्रवर धारा प्रस्फुटित हुई थी, आज वह विश्वव्यापी रूप धारण कर चुकी है। भले ही जनसामान्य में आज उसका स्थूल, बाह्य रूप ही ग्राह्य व प्रचलित है, जिसे पतंजलि ने अपने 'योग सूत्र' में विशेष महत्त्व नहीं दिया था। उनका बल तो यम, धारणा, ध्यान, समाधि आदि से संयुत 'अष्टांग योग' पर था, जिसका ध्येय साधना के द्वारा तन, मन व आत्मा की समरसता के माध्यम से आध्यात्मिक आनंद की प्राप्ति था। समय के साथ बहुत कुछ बदलता है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। आज अधिसंख्य लोगों को योग से शारीरिक स्वास्थ्य व मानसिक शांति प्रकाम्य है। योग उसके लिए भी उपादेय है।

योग शब्द का सामान्य अर्थ है– जोड़, संयोग, संबंध, उपाय व युक्ति आदि। योग वास्तव में जोड़ता है–आत्मा को परमात्मा से, स्थूल को सूक्ष्म से, काया को अंतस से, मानव को मानव से; अंततः व्यष्टि को समष्टि से।

योग जीने की एक कला है। स्वस्थ व सार्थक जीवनयापन की सुपरीक्षित भारतीय पद्धति है। योग साधना से शरीर में स्फूर्ति, मुख पर मुदिता व अंतस में आनंद संचरित होने लगता है। मानव जीवन में संतुलन, समत्व व सामंजस्य का समावेश होता है। समाज में समरसता व सौहार्द का संचार होता है। विश्व शांति सुवासित होने लगती है।

भारतीय साधकों ने तो शताब्दियों से योग को अपना रखा था, लेकिन विश्व को इसका पहला परिचय स्वामी विवेकानंद ने उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में अपने अमेरिका प्रवास में करवाया। उनके द्वारा बोए गए बीज को बाद में परमहंस योगानंद के सान्निध्य से अंकुरित व प्रस्फुटित होने का मौका मिला। उन्होंने तीन दशक तक विदेशों में रहकर आस्थावान जिज्ञासुओं को दर्शन व योग में दीक्षित किया। शायद इसीलिए पश्चिमी जगत में उन्हें 'योग के जनक' के रूप में जाना जाता है।

आधुनिक युग में बी.के.एस. आयंगर, स्वामी विष्णुदेवानंद, बाबा रामदेव आदि योगाचार्यों ने इसे जन-जन तक पहुँचाने के अथक प्रयास किए।

विष्णुदेवानंद इस 'मिशन' के लिए अपने गुरु स्वामी शिवानंद द्वारा 1957 में विदेश भेजे गए। उन्होंने अनेक देशों में योग केंद्र प्रारंभ कर लाखों को योग में दीक्षित किया। आयंगर महोदय तो इस विधा के प्रकांड पंडित माने जाते हैं। गत वर्ष ही दिवंगत हुए हैं। चीन जैसे देश ने भी उनकी विद्या का सम्मान करते हुए उनपर विशिष्ट डाक टिकट जारी किया।

भारत सरकार की पहल पर इस वर्ष संयुक्त राष्ट्र संघ ने 21 जून को 'अंतरराष्ट्रीय योग दिवस' मनाने की घोषणा की। इस प्रकार हमारी धरोहर को वैश्विक स्तर पर मान्यता मिली। प्रत्येक सच्चे भारतीय का सिर गर्व से ऊँचा हो गया। अनंत बधाइयाँ! ■

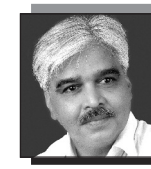

तुलसी टावरी

21वीं सदी का भारत

जहाँ शहर बसे गाँवों की गोद में !

प्रगति का अर्थ कमजोर को दबाकर स्वयं आगे बढ़ना कदापि नहीं। समाज में हर एक व्यक्ति को हक है समुचित अवसर पाने का, स्वयं के पुरुषार्थ को संपूर्णता से जीने का। विश्व की व्यवस्था में भारत एक नयी राह– 'तीसरा रास्ता'– बनाने में सक्षम है; जहाँ आर्थिक–समृद्धि पाने के लिए सदियों से चली आ रही भारतीय सभ्यता का मूलमंत्र 'विविधता में एकता' खोए नहीं, बल्कि एक स्व–प्रेरित अनिवार्यता बने।

इक्कीसवीं सदी का भारत, विश्व को एक नई दिशा देने के लिए उद्यत हो रहा है, जिससे समस्त मानव-समाज को जीने का एक नया पैगाम मिल सके। जहाँ जीवन में आर्थिक-समृद्धि के साथ-साथ वह सब भी मिल सके, जो पैसे से कभी खरीदा ही नहीं जा सकता।

क्या सभ्य और स्वतंत्र समाज के लिए यह जरूरी नहीं कि उसमें एक सहज अपनापन हो, जहाँ अजनबी इंसान से भय नहीं लगता हो। जहाँ हर बचपन को खिलने का अवसर मिल सके। जहाँ खेत-खलिहान, नदियाँ तथा जंगल इतने भी दूर न हों कि केवल टीवी पर दूर से ही दर्शन हो सकें। जहाँ पड़ोस भी परिवार-सा लगे। जहाँ हर जीव में कुछ नया कर दिखाने की तड़प पैदा हो। कुल मिलाकर, जहाँ अर्थ के साथ ही सभी प्रकार के अन्य सुख हर व्यक्ति को स्वयं के पुरुषार्थ से प्राप्त हो सकें, ऐसी व्यवस्था हो।

हम जब एक भवन का निर्माण करते हैं, उसका डिजाइन बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। अन्यथा कितना भी धन खर्च करने के बाद पछताना पड़ सकता है। भवन को फिर से गिराकर तो आप बनाने से रहे। पिछले 60 वर्षों से हम एक ही गलती लगातार करते आ रहे हैं। सारी समृद्धि और आकर्षण शहरों

शहरों में प्रति वर्ग किमी. में 30,000 लोग एक दूसरे पर लदे पड़े हैं, जबकि शहर से महज एक घंटे दूरी पर उजाड़ गाँवों में मात्र 300 लोग ही बसने के लिए बचे हैं। और ऐसा क्यों? क्योंकि शहर यानी उन्नति, और गाँव यानी पिछड़ापन।

में केंद्रित करते आ रहे हैं। इस हद तक कि भारत के किसी भी कोने में रहने वाला हर व्यक्ति यह धारणा बना चुका है कि बिना बड़े शहर गए उसकी प्रगति संभव ही नहीं। दुर्भाग्य से इसका यह अर्थ भी होने लगा कि गाँव, यानी पिछड़े लोगों के रहने की जगह। कितनी विडंबना है कि जो किसान जीने की सबसे बहुमूल्य चीज का उत्पादन करता है, वह भी बिना किसी से तनख्वाह लिए, स्वयं के पुरुषार्थ से, उसकी गिनती उसके स्वयं के बच्चे पिछड़ों में करने लगे हैं और मौका पाते ही शहर का रुख करने के लिए बाध्य हो गए हैं। क्योंकि शहर जाने से ही उनकी अच्छी कमाई हो सकती है, भले ही उसे गंदी नाली पर बने कच्चे घर में रहना पड़े, जिसे हम स्लम कहते हैं। ऐसी उल्टी अर्थव्यवस्था का हमने ही निर्माण किया हुआ है और इसे गलती मानने के बजाय अपनी श्रेष्ठता समझे बैठे हैं। क्या यह एक अनोखा डिजाइन नहीं है, जहाँ शहरों में प्रति वर्ग किमी. में 30,000 लोग एक-दूसरे पर लदे पड़े हैं, जबकि शहर से महज एक घंटे की दूरी पर उजाड़ गाँवों में मात्र 300 लोग ही बसने के लिए बचे हैं। और ऐसा क्यों? क्योंकि शहर यानी उन्नति, और गाँव यानी पिछड़ापन। इस मूखर्तापूर्ण मानसिकता के बने रहने का मूल कारण है हमारी अर्थव्यवस्था का गलत डिजाइन, 'यानी गलत नीतियाँ' जिसने धन और ज्ञान दोनों को शहरों में इस कदर केंद्रित कर दिया है कि हम सट्टेबाजी और बेईमानी से धन पाने को भी पुरुषार्थ कहने में लग गए हैं। हमारा ज्ञान बजाय नए आविष्कारों की खोज में (जिससे

जीवन और प्रकृति का तारतम्य सुगम हो) अधिक से अधिक धन हड़पने की तिकड़में लगाने में लगा है। जो गाँवों में बसे सीधे-सादे किसानों की कल्पना से कोसों दूर है। यही कारण है कि जो भारत में सच्चा पुरुषार्थ करते हैं, जैसे कि किसान, वे सामान्यतः गरीब ही बने रहते हैं।

मात्र 20 वर्ष ही हुए हैं, सॉफ्टवेयर निर्यात क्रांति ने बैंगलुरु का नक्शा ही बदल दिया है। एक नई डॉलर अर्थ-व्यवस्था (जो आज लगभग 1.35 लाख करोड़ रुपए प्रति वर्ष की है) ने 50 लाख नए लोगों को आकर्षित किया। जनसंख्या-घनत्व जो कि लगभग 5000 प्रति वर्ग किमी. था, बढ़कर 11,000 तक पहुँच गया है। क्या ही अच्छा होता, यदि बैंगलुरु को हम सुंदर बगीचों का शहर रहने

भारत में शहरों व गाँवों की स्थिति

उन्नति के अवसर बड़े-बड़े महानगरों में केंद्रित जैसे मुंबई, दिल्ली इत्यादि शहर दिन-ब-दिन नरक बनते जा रहे हैं— छोटे-छोटे पिंजरों में सिमटा जीवन, इतने महँगे घर कि जीवन भर का कर्ज, जनसंख्या-घनत्व के दबाव से लचर होते इन्फ्रास्ट्रक्चर, हर प्रकार का प्रदूषण—हवा में, पानी में। कहीं आने-जाने में समय की बरबादी (2 से 4 घंटे), न परिवार के लिए, न ही समाज के लिए समय। संपूर्णता में देखें तो- राष्ट्रीय संपत्ति का आपराधिक-दुरुपयोग सिर्फ शहर में रहने वाले व माइग्रेट करने वालों को महज रोजी-रोटी देने में।

देते और नई अर्थ व्यवस्था का आस-पास के गाँवों में नए शहरों का विकास करते, 100-200 किमी. की दूरी पर। हर व्यक्ति का जीवन-स्तर व शहर की आबोहवा भी अच्छी बनी रहती। बारी-बारी से हम हर अच्छे शहर को बरबाद ही करते जा रहे हैं, अपनी ही गलतियों के चलते। जबकि हम कितने ही गाँवों में एक नए संपदा सृजन (वेल्थ क्रिएशन) की प्रक्रिया स्थापित कर सकते थे।

हम क्यों लगातार एक गलत विकास-मॉडल को लेकर ही चल रहे हैं?

क्या ही अच्छा हो कि नई नीतियाँ ऐसी बनें कि अर्थ-व्यवस्था का सही ढंग से विकेंद्रीकरण हो सके। भारत के गाँव तकरीबन 90 प्रतिशत भूमि पर बसे हैं, जबकि शहर 10 प्रतिशत पर। कोई कारण नहीं है कि हम शहरों को अंधाधुंध 50 किमी. तक बढ़ाते जाएँ और गाँव के लोगों को पैसे देकर, विस्थापित करते जाएँ। इस तरह नकद पैसे का लालच देकर मालिक की हैसियत रखने वाले किसानों को उनके ही पूवर्जों के गाँव से हम विस्थापित कर रहे हैं, अंत में उन्हें हम मजदूरी व बरबादी की राह पर ही धकेल रहे हैं, क्योंकि बिना पुरुषार्थ से सट्टे का पाया धन उन्हें भी रास नहीं आ रहा; सिर्फ गलत ढंग से उन्हें और उनकी संतानों को नष्ट ही कर रहा है।

बजाय इसके हम क्यों न शहरों और गाँवों में एक

गाँव उजाड़ व वंचित

हर प्रकार के उन्नति के अवसरों से। न तो अच्छे स्कूल, न अच्छे कॉलेज या कि नॉलेज-इंस्टीट्यूट, न ही अच्छे अस्पताल, न सही प्रकार की टेक्नोलॉजी, न पूरी बिजली, न अच्छे रोजगार, न अच्छी आमदनी इत्यादि। साल में दो-तिहाई समय की बरबादी। गाँवों की क्षमता का पूर्णतया अनुपयोग। इकतरफा प्राव्रजन (माइग्रेशन) शहरों की ओर निरंतर जारी। संपूर्णता में देखें तो-भारत के गाँव एक अनूठी दास्ताँ हैं बेकार होती प्रतिभाओं व संभावनाओं की, 90 प्रतिशत भूमि की, क्षेत्रीय संसाधनों की तथा गाँव में बसने वाले नागरिकों की।

नया तालमेल बैठाएँ। हमें शहर भी चाहिए और गाँव भी। शहर की आवश्यकता इसलिए है कि बड़ी संख्या में विविध ज्ञान के लोगों के संगम से ही नए-नए ज्ञान का उदय होता है और गाँव इसलिए जरूरी है कि छोटे-समुदाय में ही आत्मीयता व सामाजिकता के मूल्य विकसित होते हैं। शहर व्यक्ति को विविध प्रकार के कार्यों व आजीविका

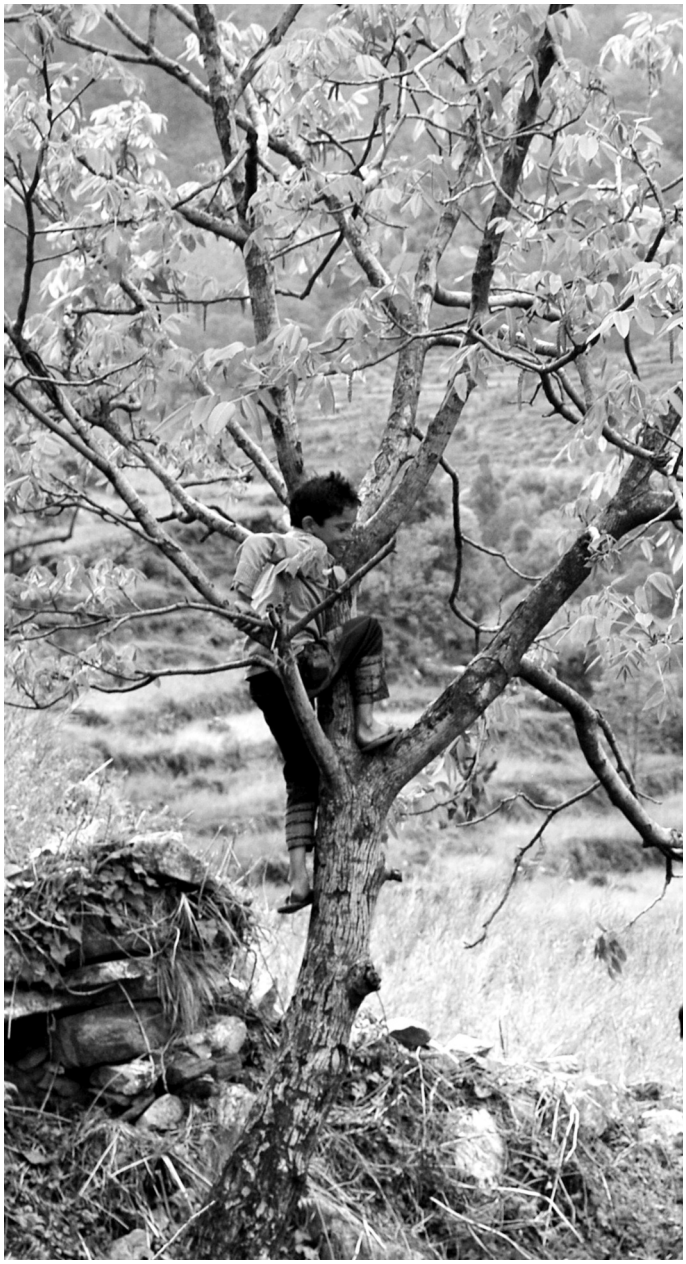

शहर व्यक्ति को विविध प्रकार के कार्यों व आजीविका के अवसर दे सकता है, तो गाँव उसे स्वस्थ और प्राकृतिक वातावरण। एक ही व्यक्ति जीवन के विभिन्न पड़ावों में दोनों प्रकार के अवसरों को जी सके, ऐसी व्यवस्था आज इंटरनेट के युग में संभव है।

के अवसर दे सकता है, तो गाँव उसे स्वस्थ और प्राकृतिक वातावरण। एक ही व्यक्ति जीवन के विभिन्न पड़ावों में दोनों प्रकार के अवसरों को जी सके, ऐसी व्यवस्था आज इंटरनेट के युग में संभव है। एक किसान खेती के अलावा लघु-उद्यम भी कर सकता है, वैसे ही एक पढ़ा-लिखा वैज्ञानिक खेती, और ऐसा होने भी लगा है। शहर और गाँव की ताकतों का संगम रोजमर्रा के जीवन में सहजता से कैसे उतारा जाए, यह हमारे लिए एक चुनौती है या कहें कि 21वीं सदी में बसावट (ह्यूमन-सेटलमेंट) के नए डिजाइन का प्रारंभ जहाँ गाँव-शहर दो शब्द न रहकर एक नए योग की परिभाषा बन सकें। जो भारत को 'रूरल' व 'अर्बन' की भ्रमित परिभाषाओं से बाहर निकाल सकें।

कैसे बन सकता है ऐसा नया डिजाइन?

एक शहर को 5 से 7 किमी. दायरे के कोर के रूप में केंद्र में बसे रहने दें और उसके चारों ओर 25 से 50 किमी. के घेरे में गाँवों को नए स्वरूप में पुनः निर्मित करें, ठीक वैसे ही जैसे हमारी पृथ्वी सुरक्षित है, चारों तरफ से घिरी हुई प्राणदायक वायुमंडल में। गाँव की आत्मीयता व परंपराएँ शहरों में संस्कृति के पनपने में ऑक्सीजन का काम करें। जहाँ एक ओर गाँव की खेती भी रहे, वहीं नई पीढ़ी उद्यमी भी बने। इतना ही नहीं, पंचायत की भागीदारी से बंजर-भूमि का उपयोग बड़े उद्योगों को लगाने के लिए तथा अन्य प्रयोगों के लिए निश्चित हो सके, ताकि जमीन-अधिग्रहण को लेकर समाज के विभिन्न घटकों के बीच कोई विवाद कभी न हो। हर संपदा-सृजन कार्य चाहे खेती हो या उद्योग, चाहे छोटा हो या बड़ा, एक- दूसरे के पूरक बन सकें, न कि विरोधी। विषय जमीन की कमी का नहीं, योजनाबद्ध तरीके से जमीन के समुचित उपयोग के निर्धारण का है। जमीन को सट्टे की कुव्यवस्था से

आज मनुष्य की भौगोलिक स्थिति उसकी उन्नति में कोई बड़ी रुकावट नहीं रही। गाँव में बसे व्यक्ति को विदेशों से भी व्यापार करने से अब कोई रोक नहीं सकता है। जो जितनी क्षमता और ज्ञान अर्जित करेगा, वह अपनी प्रगति कहीं भी रहकर कर सकता है। इस हिसाब से देखें, तो सरकार नई नीतियों के जरिए पढ़ी-लिखी नई-पीढ़ी को भी गाँव में विशेष रूप से आकर्षित कर सकती है। फिर चाहे डॉक्टर हों या टीचर, सॉफ्टवेयर आईटी-विशेषज्ञ हों या कि फूड-प्रोसेसिंग करने के इच्छुक उद्यमी।

मुक्त करने का है।

पिछले 20-25 वर्षों में जमीनों के जो भाव 10 से 20 गुने (या उससे भी ज्यादा) बढ़े हैं, उनके सही आकलन करने की आवश्यकता है। क्या यह बढ़ोतरी 'सट्टेबाजी के जरिए' हुई या कि 'सचमुच के पुरुषार्थ से नए धन के निर्माण' (क्रिएशन ऑफ वेल्थ) से हुई? जब किसी भी मकान का भाव बढ़ता है, मालिक को स्वाभाविक खुशी होती है, धनी बनने के एहसास से। वे यह भूल जाते हैं कि घर में एक और कमरा अपनी ही कमाई से बढ़ाना उसके बस में है या नहीं।

इंटरनेट के आविष्कार के साथ ही पूरी दुनिया एक नए युग में प्रवेश कर चुकी है। आज हर व्यक्ति एक मोबाइल फोन के जरिए सारे देश ही नहीं, विदेशों से भी जुड़ चुका है। यह एक मूलभूत परिवर्तन है, जो विज्ञान का वरदान बनकर हम सबको समान रूप से प्राप्त हुआ है। अब मनुष्य की भौगोलिक स्थिति उसकी उन्नति में कोई बड़ी रुकावट नहीं रही। गाँव में बसे व्यक्ति को विदेशों से भी व्यापार करने से अब कोई रोक नहीं सकता है। जो जितनी क्षमता और ज्ञान अर्जित करेगा, वह अपनी प्रगति कहीं भी रहकर कर सकता है। इस हिसाब से देखें, तो सरकार नई नीतियों के जरिए पढ़ी-लिखी नई पीढ़ी को भी गाँव में विशेष रूप से आकर्षित कर सकती है। फिर चाहे डॉक्टर हों या टीचर, सॉफ्टवेयर आईटी-विशेषज्ञ हों या कि फूड-प्रोसेसिंग करने के इच्छुक उद्यमी। अच्छे आवासीय स्कूल या कॉलेज या कि अच्छे अस्पताल गाँवों के आसपास प्रारंभ करना कोई बड़ी बात नहीं। अच्छे अनुभवी अध्यापक और डॉक्टर यदि स्वयं का ही स्कूल, कॉलेज या अस्पताल बना सकेंगे (नीतियों के सहयोग से), तो गाँव में जाकर क्यों नहीं बनाएँगे? और जब अच्छे स्कूल, कॉलेज या अस्पताल गाँव में उपलब्ध होंगे, तो धीरे-धीरे शहर से बड़े-बुजुर्ग भी क्या गाँव के खुले वातावरण में नहीं जाना चाहेंगे? यह सब तभी संभव हो सकेगा, जब राष्ट्र की नीतियाँ ऐसी बनें कि नए गाँव शहरों के लिए वरदान बन जाएँ। समय आ गया है जब 'रिवर्सल ऑफ माइग्रेशन' का नया मंत्र राष्ट्र में आर्थिक-योजना का आधार बने।

नयी नीतियों की एक झलक....

1 नॉलेज-आधारित उद्यमों के लिए विशेष प्रयास तथा उनमें निवेश के लिए नई पीढ़ी के लिए विशेष योजनाएँ (वित्तीय ऋण, आवासीय सुविधा, जमीन, इत्यादि)। जो उद्यम (कुटीर, लघु तथा भारी) क्षेत्रीय फसलों तथा खनिजों पर आधारित हों, उनके लिए आर एंड डी (शोध-अनुसंधान) के लिए संस्थागत सहयोग (इंस्टीट्यूशनल सपोर्ट)।

2 शहरों के जनसंख्या-घनत्व को सीमित रखना (लगभग 5 से 7 हजार प्रति वर्ग किमी. अधिकतम), जिससे कि शहरों में निरर्थक भीड़ न बढ़े। नए आनेवाले लोगों के लिए गाँवों की ओर ही नए संपदा सृजन अवसर

तथा घर बसाने की जगह उपलब्ध हो सके।

3 गाँवों में नए विकास-केंद्र बनें, जहाँ क्षेत्रीय व्यक्तियों को उद्यमी बनाने में प्राथमिकता मिले। उदाहरण के लिए शहरों में बसे लोगों को शुद्ध तरकारी, शुद्ध दूध, शुद्ध और ताजे मसाले तथा अन्य कई प्रकार के खाने की शुद्ध वस्तुएँ या कि हर वह चीज, जो कुटीर व लघु उद्योग में बन सकती है, गाँव में बसे उद्यमियों के द्वारा आसानी से मिल सकती है।

4 व्यावसायिक केंद्र शहरों से बाहर, इंटरनेट की ताकत का इस्तेमाल करते हुए लगाए जा सकते हैं, सरकारी दफ्तर भी। इससे आस-पास के गाँवों के कम पढ़े-लिखे लोगों के लिए भी सरल कार्य करने के स्थायी रोजगार अवसर घर के ही नजदीक उपलब्ध होंगे। शहर में बसे व्यक्ति थोड़ा बाहर यात्रा करेंगे तो गाँव की शुद्ध आबोहवा का भी लाभ उन्हें मिलेगा। इस तरह बहुत सारे लोगों की आमदनी के स्रोत शहर में न रहकर, नए गाँव ही बने रहेंगे और दूर के गाँवों से भी जो लोग आना चाहेंगे, उन्हें इन्हीं नए गाँवों में बसने की जगह आसानी से मिल सकेगी और शहरों में स्लम पैदा ही नहीं होंगे।

5 भवन-निर्माण तथा एफ एसआई(फ्लोर-स्पेस-इंडेक्स) नीतियों को इस ढंग से बनाने की आवश्यकता है कि जमीनों तथा भवनों में सट्टा-निवेश करने वालों को कोई रुचि न रह पाए। जिन्हें सचमुच घरों में रहना है तथा संपदा सृजन का कार्य करना है, उन्हीं के हिसाब से नए भवन बनें। इससे अर्थव्यवस्था में नए अवसर पैदा होंगे, महँगाई पर नियंत्रण होगा तथा हर व्यक्ति को संपन्न बनाने में मदद मिलेगी। जमीनों तथा भवनों के भावों का बेवजह बढ़ना, अर्थव्यवस्था की कमजोरी की निशानी है, न कि उन्नति की। घर एक मूलभूत आवश्यकता है हर परिवार के लिए, उसके सम्मान व सुरक्षा के लिए। घर का महँगा होना परिवार को संपन्नता नहीं, गरीबी के करीब ले जाता है।

मगर हर किसी को अपनी स्वयं की पहचान के साथ सम्मानपूर्वक जीने का जो हक़ मिल सके, यही सच्ची मानव-सभ्यता की पहचान है। जहाँ उन्नति के मार्ग हर किसी के लिए वैसे ही खुले हों, जैसे कि पर्वत पर चढ़ने वाला हर व्यक्ति अपने समय में अपनी रफ़्तार से एक दिन शिखर पर पहुँच सकता है, स्वयं के पुरुषार्थ से।

6 एक नई संरचना जिसमें पूरा समाज शहर हो या गाँव एक ही माला में गूँथा हो, जैसे कि एक बगीचा होता है, जहाँ बरगद का बड़ा पेड़ होता है, तो नन्हे पौधे भी, मिट्टी को ढकती घास भी; फलदार वृक्षों की शृंखला होती है, तो महकने वाले फूलों की लताएँ भी। हर व्यक्ति की क्षमता अलग-अलग होती ही है। मगर हर किसी को अपनी स्वयं की पहचान के साथ सम्मानपूर्वक जीने का जो हक मिल सके, यही सच्ची मानव-सभ्यता की पहचान है। जहाँ उन्नति के मार्ग हर किसी के लिए वैसे ही खुले हों, जैसे कि पर्वत पर चढ़ने वाला हर व्यक्ति अपने समय में अपनी रफ्तार से एक दिन शिखर पर पहुँच सकता है, स्वयं के पुरुषार्थ से। इसलिए शहर को केंद्र में रख कर उन्नत गाँवों का जो एक बड़ा कैनवास है, उसके डिजाइन के कुछ बिंदु निम्न हो सकते हैं–

■ अलग-अलग स्थलों की भूमिकाएँ तथा प्राथमिकताएँ तय करना, यह एक मूलभूत कार्य है।

■ इसमें घर से काम पर जाने में जो समय लगता है,

उसका भी हिसाब है, ताकि हर व्यक्ति का समय बचे– उसके बच्चों के लिए, परिवार व समाज के लिए। जिस तरह आज बड़े शहरों में इंसान का कीमती समय आने-जाने में बरबाद होता है, तो उसके पास कहाँ से समय रहेगा किसी के भी लिए।

■ इसमें खेती से लेकर, कुटीर तथा भारी उद्योगों के निर्माण की योजना बनाना इसका उद्देश्य है।

■ इसमें कैसे गाँव के लोगों की आमदनी घर के निकट ही बढ़े, इसका चिंतन है। शहर में स्लम कभी बने ही न।

■ गाँव में स्थित स्कूल व कॉलेज के जरिए कैसे शहरों में बसने वाले बच्चों को गाँव के जीवन का निकटता से परिचय हो सके तथा वे गाँव की आत्मीयता में अभिभूत हो सकें।

■ संपदा सृजन के 'शुभ-लाभ' के द्वारा पूरे समाज की उन्नति संभव हो, तभी स्वयं के पुरुषार्थ से हर किसी के संपन्न होने की पूरी संभावना बन सकेगी, चाहे उसके जीवन का प्रारंभ कहीं से भी, किसी भी स्तर से हुआ हो।

■ नए रूप में बने गाँवों में जनसंख्या-घनत्व अभी जो मात्र 300 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. है, 5 से 10 वर्षों में 3000 तक पहुँच सके और इस तरह नया भारत शहरों की नालियों पर बसे स्लम में न रहकर अपने ही ऊर्जावान गाँवों में, नए-नए सुंदर व बड़े घरों में रह सके।

■ गाँवों की गोद में बसे शहर– एक झलक

भारत के युवा को अपने सपने पूरे करने का अवसर अपने ही घर के आस-पास मिल सकेगा, चाहे वह शहरों में बसा हो या गाँवों में।

■ 21वीं सदी के नए गाँवों में विकास-केंद्र का निर्माण

भारत के युवाओं के लिए एक सुनहरा अवसर! भारत की अर्थव्यवस्था को सुदृढ करने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है युवा उद्यमियों के लिए नए अवसर पैदा करना। अगले 50 से 60 वर्षों तक एक ऐसी संपदा सृजन शृंखला चलती रहेगी, जिसके मुख्य किरदार की भूमिका युवा शक्ति की ही होगी। कितने ही युवा इंजीनियर, डॉक्टर, मैनेजर, आर्किटेक्ट, आईटी सर्विस-प्रोवाइडर तथा अन्य विधाओं में निपुण नए-नए उद्यमियों के लिए जो अवसर उपलब्ध होंगे नए संपदा सृजन के। देश के अंदर से ही नए धन की उत्पत्ति होती है, जब हर व्यक्ति का समय सार्थक कार्यों में लग पाता है। बड़ी कंपनियों तथा विदेशी उद्यमियों की भी भूमिका बनी रहेगी, मगर जब तक गाँव की अर्थव्यवस्था अपने पैरों पर खड़ी नहीं होगी, वह भी युवा उद्यमियों की ताकत से, आज के शहर-केंद्रित सट्टेबाजी से चलित विकृत अर्थव्यवस्था से छुटकारा संभव ही नहीं। गाँव की संपन्नता व स्वाभिमान, गाँव में ही संपदा सृजन करने की प्रक्रिया को स्थापित करने से संभव है। यह मिशन भारत के युवाओं के लिए 21वीं सदी की प्रेरणादायक

चुनौती बन सकता है, जैसे कि 1947 के पहले देश का मिशन स्वतंत्रता प्राप्त करना था।

■ भारत की आंतरिक अर्थव्यवस्था स्वयं के पुरुषार्थ व संपदा सृजन से सुदृढ हो न कि विदेशी पूँजी व निर्यात के भरोसे जब भारत का हर नागरिक अपने पूरे समय का पूरा उपयोग संपदा सृजन में कर पाएगा, तो भारत अपने अंतस से समृद्ध होगा, बिना किसी भी प्रकार के विदेशी आर्थिक निवेश (एफडीआई) पर निर्भरता की बाध्यता के। यह अर्थव्यवस्था अपने ही स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों में अपने ही लोगों के द्वारा निवेश किए समय, ज्ञान व पुरुषार्थ के द्वारा निर्मित होगी, हर किसी प्रकार के ज्ञान को विश्व के किसी भी कोने से सीखते हुए। साथ ही अपने बनाए सामान की विदेशों में बिक्री (एक्सपोर्ट) भारत के लिए एक सम्मान का कारण जरूर बनेगी, मगर बाहरी बाजार पर निर्भरता विवशता नहीं बनेगी।

मुफ्त में धन बाँटने की प्रक्रिया ने एक तरफ किसानों के लिए खेती करना महँगा कर दिया है, तो दूसरी तरफ एक बड़े समुदाय को भ्रष्टाचारी व मुफ्तखोर बनाकर बरबाद कर रहा है। गाँव के आत्म-सम्मान को खत्म कर कोई राष्ट्र कभी उन्नति नहीं कर सकता है।

■ परंपरागत ज्ञान तथा कारीगरी व जुगाड़ की अद्‌भुत क्षमता

भारत के हजारों वर्षों के इतिहास में परंपरागत ज्ञान तथा कारीगरी लगातार बनी रही है– हर क्षेत्र में, जैसे स्वास्थ्य, आहार, कृषि, जड़ी-बूटियाँ, हस्त-कलाएँ इत्यादि। यह एक ऐसी धरोहर है, जो अब अपना मूल्य खोती जा रही है, गाँव के उजड़ने से 21वीं सदी के नए गाँवों को बनाने में ये ही करोड़ों लोग रीढ़ का काम करेंगे। कौशल विकास के राष्ट्रीय मिशन में इस समुदाय के लाखों उस्तादों व कुशल शिल्पियों की बहुत बड़ी भूमिका संभव है, जिससे कम समय में बहुत बड़ी संख्या में नए कारीगर तैयार होंगे। ऐसा होने से भारत में आधुनिक टेक्नोलॉजी के साथ परंपरागत विधाओं का एक नवीन संगम हो सकेगा, जो कि हमारी अर्थव्यवस्था को पुनः एक अंतर्निहित सुदृढता प्रदान करेगा। सामान्य भाषा में इसे जुगाड़ के नाम से विश्व-प्रसिद्धि भी मिल चुकी है। गाँव के सुदृढ होने से भारत की यह छिपी हुई शक्ति, विश्व की बड़ी विदेशी इंजीनियरिंग कंपनियों को अच्छी प्रतिस्पर्धा भी दे सकेगी एवं नई दिशा भी।

■ गाँव के जन-साधारण की सह-भागिता संभव

सामान्यतः यह माना जाने लगा है कि जिस जनसंख्या को खेती में लगा माना जाता है (लगभग 50 प्रतिशत), उनमें से आधे शायद कोई खास कार्य नहीं जानते या करते, यानी छिपी हुई बेरोजगारी। भारत के गाँवों में बसे ऐसे करोड़ों साधारण नागरिक अभी जिस स्तर के कला-कौशल को सीखने की क्षमता रखते हैं, उसे ध्यान में रखते हुए, नए गाँवों के विकास में उनकी भागीदारी भी संभव हो सकती है। इससे उनकी नए संपदा सृजन की क्रिया में सीधी भागीदारी तय हो पाएगी तथा इस कारण से वे सीधे लाभ के हकदार भी बनेंगे।

■ भारत के सेवा-निवृत्त प्रोफेशनल्स, जो स्वस्थ हैं, उनके लिए एक नया अध्याय होगा जीवन का, जब वे भारत के नए युवा उद्यमियों को मार्ग-दर्शन प्रदान कर पाएँगे, उन्हें ट्रेनिंग दे पाएँगे–प्रबंधन की, टेक्नोलॉजी की, उद्यमिता की, अपने ही शहरों में या कि नजदीक में बन रहे गाँवों के विकास-केंद्रों में।

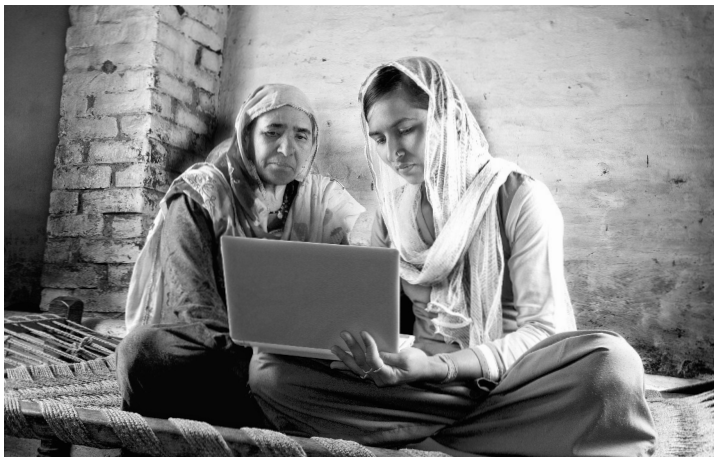

भारत के गाँवों में बसे ऐसे करोड़ों साधारण नागरिक अभी जिस स्तर के कला-कौशल को सीखने की क्षमता रखते हैं, उसे ध्यान में रखते हुए, नए गाँवों के विकास में उनकी भागीदारी भी संभव हो सकती है।

■ सरल जीवन-शैली, अक्षय-ऊर्जा तथा कचरे का पुनः चक्रण

आज जिस हिसाब से शहरों के संपन्न व्यक्ति ऊर्जा खर्च करते हैं, पूरे समाज के लिए यह कभी संभव ही नहीं हो सकेगा, जब तक कि कोई ऐसा आविष्कार न हो कि ऊर्जा हवा की तरह सहजता से उपलब्ध हो। अतः यह स्वाभाविक ही है कि जनसाधारण संपन्नता के साथ तो जिए, पर एक ऐसी सरल जीवन-शैली से कि उसकी ऊर्जा की आवश्यकता बहुत ही सीमित हो। कचरे की उत्पत्ति भी नगण्य हो। साथ ही हर व्यक्ति को एक अच्छी आबोहवा से परिपूर्ण घर मिल सके अपनी रुचि के हिसाब से कार्य मिल सके, तथा उसके समय पर उसका स्वयं का नियंत्रण हो सके। सरल जीवन-शैली एक सामाजिक उद्देश्य के रूप में संभव बनाना इस डिजाइन की विशेषता है।

■ पारिवारिक व सामाजिक मूल्य

सदियों से भारत में एक अमूल्य परंपरा बनी हुई है, जहाँ व्यक्ति का अपने परिवार तथा समाज के प्रति समर्पण एक अंतर्निहित चेतना है। इस भावना की जड़ में मनुष्य का मनुष्य के प्रति धर्म का गहरा चिंतन है, जो कि आज भी भारत के गाँवों में देखा व अनुभव किया जा सकता है। शहरों की मारा-मारी की जिंदगी में वह कहीं खोने-सी लगी है। परिवारों के टूटन का दर्द बहुत पीड़ादायक हो जाता है माँ-बाप के लिए। ऐसी स्थिति में सामाजिक मूल्यों की परवाह भला किसे होगी। गाँवों की गोद में बसे शहरों में यह संभव हो सकेगा कि भारत की यह भावनात्मक चेतना एक नए सिरे से जाग्रत् होगी तथा समाज में एक नई समरसता का कारण बनेगी। इसके चलते ही समस्त समाज एक-दूसरे में गुँथा हुआ तथा सुरक्षित महसूस करता है। व्यक्तिवाद की अति में डूबी दुनिया के सामने, युगों-युगों से यही सामाजिक भाव भारत को दुनिया में विशिष्टता प्रदान करता आया है। इस अमूल्य भावना का आँकड़ों में कोई आकलन हो ही नहीं सकता।

■ समान विकास

आज के शहरों को देखें तो एक बड़ी पीड़ा का कारण है- वहाँ स्पष्ट दिखने वाली आर्थिक-विषमता। महँगी-महँगी कॉलोनियों के चारों ओर बने स्लम। किसी भी विचारशील व्यक्ति को यह अखरता ही होगा, भले ही हमें इसकी आदत सी पड़ जाती हो। जब गाँवों में संपन्नता होगी तथा विकास के पूरे अवसर होंगे, तो न तो शहरों में स्लम होंगे और न ही गाँवों में गरीबी।

■ बच्चों के विकास के लिए समय की उपलब्धता

बड़े शहरों में अधिकतर लोग घर से काम पर आने-जाने में ही इतना समय (2 से 4 घंटे) गँवा देते हैं कि उनके पास अपने बच्चों तथा परिवार के लिए समय बचता ही नहीं। ऐसे में बच्चों के मानसिक व भावनात्मक विकास में कमी रह जाने की पूरी संभावना रहती है। गाँवों की

गोद में बसे शहर तथा गाँवों में बचपन की भावनात्मक उन्नति जीवन भर प्रेरणादायक बन पाएगी। इसी से पारिवारिक व सामाजिक मूल्यों का विकास हो सकता है, जो कि अनमोल है।

■ सृजनात्मक चेतना का विकास

जब तक कोई भी व्यक्ति रोजी-रोटी की जद्दोजहद से जूझता रहता है, उसकी सृजनात्मक चेतना सोई पड़ी रहती है। जैसे ही व्यक्ति को समय की स्वतंत्रता मिलती है, जिसमें वह अपनी मरजी से कुछ भी कर सके, उसकी सृजनात्मक चेतना जाग्रत् होने लगती है। ऐसे में गाँवों में बसे शहर तथा उनसे प्रभावित गाँवों में नए आविष्कारों की संभावनाएँ बढ़ सकेंगी।

■ शहरों का संतुलित विकास

ऊर्जावान गाँवों से घिरे शहरों का विकास भी संतुलित होगा। ये गाँव इन शहरों के लिए नए-नए प्रयोगों को करने का स्थान बन सकेंगे तथा इससे गाँवों में भी सतत नए ज्ञान तथा ज्ञान-प्रणाली का विस्तार होगा।

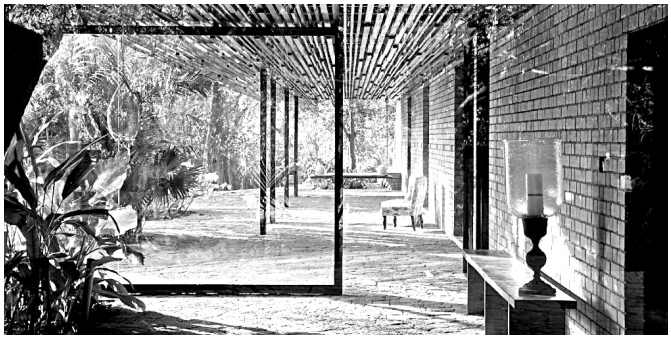

■ महानगरों में छिपे हैं नैतिक पतन के बीज

बड़े शहरों की जटिलता में उन लोगों का छुपा रहना बहुत आसान है, जो जन-सामान्य की मेहनत की कमाई को हड़पने की नई-नई तरकीबें बनाते रहते हैं। इसी कारण से समाज का ज्यादा धन इन्हीं कुछ लोगों के हाथों में सिमटा हुआ है। गाँवों की गोद में बसे शहरों में सामाजिक मूल्यों के जीवित रहते इस प्रकार की संभावनाएँ नगण्य हो जाएँगी। शुभ लाभ कमाने वालों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो सकेगी।

■ सरल व सहज सरकारी व्यवस्था

ग्राम-पंचायतों की बढ़ी हुई भूमिका के चलते शहर और गाँवों में निरंतर संवाद रहेगा, जिससे सरकारी व्यवस्था न केवल पारदर्शी होगी, बल्कि अत्यंत ही सरल व सहज हो सकेगी।

■ सरकारी टैक्स का कम होना तथा उसका सदुपयोग होना

एक उद्यमी समाज, जो सामाजिक मूल्यों की स्वस्थ परंपराओं में जीता हो, बहुत प्रकार की सरकारी व्यवस्थाओं का मोहताज नहीं होगा, जैसे कि समाज में पुलिस, सुरक्षा, कर-संग्रह व यात्रा इत्यादि प्रकार के खर्च अत्यंत ही सीमित होंगे। अतः जहाँ एक ओर कम टैक्स की आवश्यकता होगी, वहीं दूसरी तरफ करों का इस्तेमाल भी सही होने की संभावना रहेगी।

2014 के चुनाव में भारत के युवाओं ने एक नए नेतृत्व को पूर्ण बहुमत का अप्रत्याशित अवसर दिया है, इस आशा में कि भारत एक समृद्ध राष्ट्र बन सके। छह दशकों के लंबे इंतजार के बाद भारत बहुत व्यग्र है। आज तक भारत की किसी भी सरकार ने भारत की उपर्युक्त अंतर्निहित 'गाँव-केंद्रित संपदा सृजन संभावना' को पूरी तरह नहीं समझा है। गाँव व शहरों की यह नई जुगलबंदी भारत की अर्थव्यवस्था को एक नया आयाम दे सकेगी। जहाँ समोत्कर्ष (सबका साथ-सबका विकास) बहुत दूर के भविष्य का सपना न होकर आज की सच्चाई बन सके। पूँजीवाद और साम्यवाद के भ्रम से उबरकर, उद्यमी-विकेंद्रीकरण का यह मार्ग वह तीसरा रास्ता हो सकता है, जो विश्व की चरमराती हुई अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करने की दिशा में एक नई चेतना दे सके। ■

(लेखक सामाजिक सरोकार के समर्थ चिंतक हैं।)

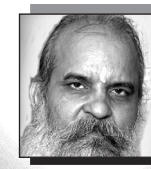

डॉ. विनोद बब्बर

पर्यावरण और सांस्कृतिक चेतना

भारतीय दर्शन में समस्त संसार को जड़ और चेतन में विभाजित किया गया है। हर छोटे-बड़े जीव से पेड़-पौधों तक में चेतना है। इस चेतना को साकार बनाए रखने के लिए 'आवरण' चाहिए। ये आवरण पंचतत्त्वों से निर्मित है, जिसे हम मिट्टी, जल, वायु, आकाश, अग्नि भी कहते हैं।

'संपूर्ण ब्रह्मांड एक ही कुटुंब है, यहाँ किसी का अलग अस्तित्व नहीं है।' भारतवर्ष की मुख्यधारा की यह निष्पत्ति अपने आप में पर्यावरण-सुरक्षा का मूल सूत्र समेटे हुए है। जब हम अपनी सांस्कृतिक परंपरा की बात करते हैं तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि हमारा उद्देश्य आधुनिकता को पूरी तरह से नकारना है। आधुनिकता और प्रकृति के बीच संतुलन की अनदेखी नहीं की जा सकती। विशेष रूप से पर्यावरण के संदर्भ में यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि अंधी आधुनिकता ने प्रकृति का ऐसा दोहन किया है कि आगे का रास्ता तक दिखने में कठिनाई होने लगी है। भारतीय दर्शन में समस्त संसार को जड़ और चेतन में

प्रदूषण सबसे पहले हमारे मन-मस्तिष्क में प्रवेश करता है। जब मन आत्मकेंद्रित होकर केवल अपने सुख की चिंता करने लगता है, बस यहीं से आरंभ होता है प्रकृति के प्रति इकतरफा व्यवहार का दौर। हम लेना तो सबकुछ चाहते हैं लेकिन कुछ भी देने की सोच नहीं रखते।

विभाजित किया गया है। हर छोटे-बड़े जीव से पेड़-पौधों तक में चेतना है। इस चेतना को साकार बनाए रखने के लिए 'आवरण' चाहिए। यह आवरण पंचतत्त्वों से निर्मित है, जिसे हम मिट्टी, जल, वायु, आकाश, अग्नि भी कहते हैं। इन तत्त्वों की संतुलित उपस्थिति का बने रहना प्राणी-जगत् के अस्तित्व की अनिवार्य शर्त है। बस यही है पर्यावरण-संरक्षण। जब यह संतुलन बिगड़ जाए तो स्वाभाविक है कि जैविक समीकरण भी सलामत नहीं रहता। इससे प्रकृति का चक्र भी प्रभावित होता है, जो अनेक प्रकार के विनाशों का कारण बनता है। बस यही तो है प्रदूषण।

प्रदूषण सबसे पहले हमारे मन-मस्तिष्क में प्रवेश करता है। जब मन आत्मकेंद्रित होकर केवल अपने सुख की चिंता करने लगता है, बस यहीं से आरंभ होता है प्रकृति के प्रति इकतरफा व्यवहार का दौर। हम लेना तो सबकुछ चाहते हैं, लेकिन कुछ भी देने की सोच नहीं रखते। पर्यावरण के संरक्षण के लिए प्रकृति तथा मानव प्रकृति में उचित सामंजस्य की आवश्यकता है। वेदों में इन दोनों तत्त्वों का वर्णन उपलब्ध है। जिसका स्पष्ट भाव है कि हम प्रकृति से उतना ग्रहण करें, जितना हमारे लिए आवश्यक हो तथा प्रकृति की पूर्णता को क्षति न पहुँचे। परिवारों में माँ-दादी-नानी इसी भाव से तुलसी की पत्तियाँ तोड़ती हैं।

प्राचीन भारतीय वाङ्मय वैदिक-साहित्य, पुराणों, धर्मशास्त्रों, रामायण, महाभारत, संस्कृत साहित्य के अन्यान्य ग्रंथों, पालि-प्राकृत साहित्य आदि की छानबीन करने पर पुरातन भारत की अरण्य-संस्कृति के मनोहर स्वरूप का साक्षात्कार होता है। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में अनेक रमणीय उद्यानों का संकेत मिलता है। 'अग्निपुराण' में कहा गया है कि जो मनुष्य एक भी वृक्ष की स्थापना करता है, वह तीस हजार इंद्रों के काल तक स्वर्ग में बसता है । जितने ही वृक्षों का रोपण करता है, अपने पहले और पीछे की उतनी ही पीढ़ियों को वह तार देता है । 'मत्स्यपुराण' में वृक्ष-महिमा के प्रसंग में यहाँ तक कहा गया है कि दस कुओं के समान एक बावड़ी, दस बावड़ियों के समान एक तालाब, दस तालाबों के समान एक पुत्र का महत्त्व है, जबकि दस पुत्रों के समान महत्त्व एक वृक्ष का अकेले है। पर्यावरण और जीवन का एक-दूसरे से घनिष्ठ संबंध है कि पर्यावरण के बिना जीवन नहीं हो सकता और जीवन के बिना पर्यावरण नहीं हो सकता। भारतीयता का अर्थ ही है- हरी-भरी वसुंधरा और उसमें लहलहाते फूल, गरजते बादल, नाचते मोर और कल-कल बहती नदियाँ। यहाँ तक कि भारतीय संस्कृति में वृक्षों और लताओं को देव-तुल्य माना गया है। जहाँ अनादिकाल से इस प्रार्थना की गूँज होती रही है- 'हे पृथ्वी माता, तुम्हारे वन हमें आनंद और उत्साह से भर दें।' पेड़-पौधों को सजीव और जीवंत मानने का प्रमाण भारतीय वाङ्मय में विद्यमान है।

भारतीय संस्कृति में वृक्षों और लताओं को देव-तुल्य माना गया है। जहाँ अनादिकाल से इस प्रार्थना की गूँज होती रही है- 'हे पृथ्वी माता, तुम्हारे वन हमें आनंद और उत्साह से भर दें।'

वेदों में पर्यावरण को अनेक तरह से बताया गया है, जैसे– जल, वायु, ध्वनि, वर्षा, खाद्य, मिट्टी, वनस्पति, वनसंपदा, पशु-पक्षी आदि। जीवित प्राणी के लिए वायु अत्यंत आवश्यक है। प्राणिजगत् के लिए संपूर्ण पृथ्वी के चारों ओर वायु का सागर फैला हुआ है। 'ऋग्वेद' में वायु के गुण बताते हुए कहा गया है, 'वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे। प्रण आयूँषि तारिषत', शुद्ध ताजा वायु अमूल्य ओषधि है, जो हमारे हृदय के लिए दवा के समान उपयोगी है, आनंददायक है। वह उसे प्राप्त कर हमारी आयु को बढ़ाता है। वृक्षों से ही हमें खाद्य सामग्री प्राप्त होती है, जैसे फल, सब्जियाँ, अन्न तथा इसके अलावा ओषधियाँ भी प्राप्त होती है और यह सब सामग्री पृथ्वी पर ही हमें प्राप्त होती हैं। 'अथर्ववेद' में कहा है- 'भोजन और स्वास्थ्य देनेवाली सभी वनस्पतियाँ इस भूमि पर ही उत्पन्न होती हैं। पृथ्वी सभी वनस्पतियों की माता और मेघ पिता हैं, क्योंकि वर्षा के रूप में पानी बहाकर यह पृथ्वी में गर्भाधान करता है।' वेदों में इसी तरह पर्यावरण का स्वरूप तथा स्थिति बताई गई है और यह भी बताया गया है कि प्रकृति और पुरुष का संबंध एक-दूसरे पर आधारित होता है।

नीम-पीपल आदि वृक्षों को घर-आँगन या आसपास लगाना हमारी परंपरा का विस्तार है। वृक्ष हमारे जीवन में रचे-बसे हैं, इसीलिए तो हमारी लोक-गाथाओं, लोकगीतों में शुद्ध सुगंध शीतल समीर, खुला आकाश, निर्मल जलधारा को पर्याप्त सम्मान प्राप्त है। पीपल जैसे पर्यावरण-रक्षक वृक्ष के महत्त्व की चर्चा जन-जन के हृदय में है। गौतम बुद्ध के ज्ञान का साक्षी यही बोधिवृक्ष रहा है तो विश्व प्रसिद्ध ग्रंथ 'गीता' में श्रीकृष्ण विराट् रूप दिखाते हुए कहते हैं, 'अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां' (हे अर्जुन! मैं वृक्षों में पीपल हूँ)। हमारे समाज में पेड़ों को देवताओं के प्रतीक रूप में पूजा-अर्चना तथा सुरक्षा की लोक परंपरा हैं, जैसे तुलसी विष्णुप्रिया है, केला बृहस्पति

का रूप है, बरगद शिव का निवास है, नीम देवी का वास है, पीपल विष्णु का प्रतिरूप है। जैन तेरापंथ' में तो गुरुदीक्षा के नियमों में से एक है 'हरे पेड़ को न काटना। पृथ्वी, नदियों-सरोवरों, आकाश, वायु आदि को देवत्व प्रदान कर धरती व नदियों को माता तथा आकाश को पिता के रूप में अंगीकार कर भारतीय मनीषा ने जलवायु को प्रदूषण-मुक्त रखने के भाव को भी अमूर्त प्रेरणा दी है। वैदिक युग के देवता प्राकृतिक शक्तियों का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। 'ऋग्वेद' का 'अप् सूक्त' और 'अथर्ववेद' का 'भूमिसूक्त' क्रमशः जल व जमीन पर लिखी विश्व की संभवतः प्रथम कविता है।

पेड़ों की अंधाधुंध कटाई रोकने हेतु देशी तरीके से जन-संघर्ष का यहाँ शानदार इतिहास रहा है । सन् 1731 में राजस्थान में जोधपुर के समीप स्थित खेजड़ीली गाँव में, खेजड़ी वृक्ष को बचाने के लिए बिश्नोई समूह के 363

नर-नारियों ने अपने प्राणों की बलि दे दी । पेड़ों से चिपक कर उन्होंने उन्हें काटने का विरोध किया। बेशक उस समय अत्याचारी राजा के आदेश पर कुल्हाड़ियों ने उनके प्रति बेरहमी दिखाई, लेकिन उनका बलिदान व्यर्थ नहीं गया। बाद में कटाई रोक दी गई थी। टिहरी-गढ़वाल का 'चिपको आंदोलन', जिसके प्रणेता सुंदरलाल बहुगुणा रहे हैं, स्वतंत्र भारत में पेड़ों को बचाने में सफल एवं ऐतिहासिक आंदोलन था। इसी प्रकार से जल संचय और जल संरक्षण के लिए भी अनेक प्रयास होते हैं। मैगसेसे पुरस्कार प्राप्त राजेंद्र सिंह जल बिरादरी के माध्यम से नदियों की निर्मलता और निरंतरता के लिए अभियान चलाए हुए हैं। उनके प्रयासों की सफलता राजस्थान, गुजरात में अनुभव की जा रही है जहाँ विलुप्त प्रायः नदियों को उन्होंने जन-चेतना के माध्यम से जीवित करने में सफलता प्राप्त की है।

प्राकृतिक तंत्रों का संरक्षण और उनके बीच संतुलन स्थापित रखने का आशय यह है कि उनका उपयोग इस तरह हो, जिससे उनके मूल रूप में कम-से-कम परिवर्तन हो, जिससे आसान पुनःचक्रण (रि-साइक्लिंग) द्वारा आसानी से उनकी क्षति-पूर्ति होती रहे और प्राकृतिक संसाधन यथासंभव अपने मूल रूप में सुरक्षित रहें। यह तब संभव है, जब हम लालच से रहित होकर प्रकृति की उदारता का उपयोग करें, उपभोग नहीं। इसकी प्रेरणा 'ईशावास्योपनिषद्' का प्रथम मंत्र दे रहा है– 'इस संसार में जो कुछ है, वह सब ईश्वर से व्याप्त या ईश्वर का आवास है, इसलिए उनका उपभोग करना हो तो बिना उन में आसक्ति रखे, त्याग-भाव से उपभोग करें, कारण यह धन है किस का? अर्थात् किसी एक का तो है नहीं। कितनी सही है यह जीवन-दृष्टि! पर्यावरण के हर अंग की स्वच्छता तथा सबके बीच सौमनस्य बनाए रखने के लिए सदा सचेष्ट रहने वाली मानसिकता से ही कभी यह मंत्र सृजित हुआ होगा, जो आज तक किन्हीं लोगों की नित्य-प्रार्थना या कर्मकांड का अंग बना हुआ है–

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः
शान्तिरोषधयः शान्ति। वनस्पतयः
शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं
शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।

यजुर्वेद 36.17

अर्थात् द्युलोक (आकाश), अंतरिक्ष, पृथ्वी - सब में शांति विराजे। सभी देवता, यानी प्राकृतिक शक्तियाँ शांतिमय हों। सबकी अलग-अलग शांति एक महाशांति की रचना करे, जिससे हमारे जीवन में शांति-समृद्धि बनी रहे।

अंत में पुराने समय से जारी एक परंपरा का उल्लेख करना सामयिक होगा, जिसे आज भी कुछ क्षेत्रों में जीवंत रखा गया है। गाँव में जब भी कोई नया कुआँ बनता था, तो तब तक उसका उपयोग शुरू नहीं होता था, जब तक किसी बरगद-तरु के साथ उसके ब्याह की रस्म पूरी नहीं कर दी जाती थी। इसे अंधविश्वास घोषित करने वाले नहीं समझ सकते कि इस लोकाचार में पर्यावरण के प्रति हमारी सांस्कृतिक चेतना की प्रतिबद्धता है, जो वनस्पति और जल के परस्पर सकारात्मक संबंधों की साकार अभिव्यक्ति है। तथाकथित विकासवादी शायद नहीं जानते हों कि इस मान्यता को आज के पर्यावरणविद् भी सराहते हैं।

उत्तर भारत के कुछ क्षेत्रों में प्रचलित यह सुहाग-गीत पेड़ के साथ जन-मन का अटूट रिश्ता प्रस्तुत करता है। विदा होती बेटी कहती है, 'बाबा! नीम का पेड़ मत काटना, उस में चिड़ियाँ बसती हैं।' पेड़ को मायके का प्रतीक मान-कर उसका कहना है कि मुझे दूर देश में मत ब्याहना, अन्यथा यह देश छूट जाएगा। वृक्षों के घटने पर कवि रहीम चेताते हुए कहते हैं–

रहिमन वे अब बिरछ कहँ जिन की छाँह गंभीर।
बागन बिच-बिच देखियत सेंहुड़-कंज-करीर।।

(लेखक राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका 'राष्ट्र किंकर' के संपादक हैं।)

क्यों जानलेवा हुए हवा और पानी

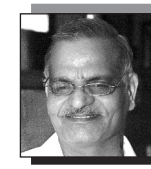

डॉ. रवींद्र अग्रवाल

भारत का जल, जंगल और जमीन बीमार हो गए हैं, जिसके कारण हमारा भोजन, पानी और प्राणवायु सब जहरीले हो गए हैं। कैंसर जैसे असाध्य रोगों ने लोगों को अपनी गिरफ्त में जकड़ लिया है। यह सब क्यों हुआ और इससे मुक्ति का क्या कोई मार्ग है?

राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण (नैशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल) ने 8 अप्रैल, 2015 को दस वर्ष से ज्यादा पुराने डीजल वाहनों के चलने पर रोक लगा दी, इससे पूर्व उसने पिछले वर्ष 26 नवंबर, 2014 को 15 वर्ष पुराने वाहनों के चलने पर रोक लगाई थी। इन 133 दिनों में ऐसी कौन-सी बड़ी घटना हो गई या कौन-सा नया रहस्य उजागर हो गया कि न्यायाधिकरण को डीजल वाहनों के लिए एक नया आदेश जारी कर इनकी आयु सीमा 15 वर्ष से घटाकर दस वर्ष निर्धारित करनी पड़ी?

न्यायाधिकरण का यह नया आदेश वास्तव में दिल्ली के एक अंग्रेजी समाचार-पत्र में वायु प्रदूषण के संबंध में समाचार शृंखला 'डेथ बाई ब्रेथ' के प्रकाशन के उपरांत जारी किया गया, जैसा कि यह समाचार-पत्र स्वयं यह दावा भी कर रहा है।

पेट्रोलियम वाहनों, विशेषकर डीजल वाहनों से होने वाले प्रदूषण और उसके स्वास्थ्य पर पड़ रहे दुष्प्रभाव के विषय में इस समाचार-पत्र में ऐसी कौन-सी नई बात कही गई है कि जिससे प्रभावित होकर न्यायाधिकरण ने आनन-फानन में और बिना संबंधित पक्षों को सुने उक्त फैसला सुना दिया और जिसे बाद में शोर-गुल होने पर न्यायाधिकरण को स्थगित करना पड़ा? वास्तविकता यह है कि डीजल वाहनों से होने वाले प्रदूषण के खतरों को देखते हुए ही, सर्वोच्च न्यायालय के आदेश पर 2003 में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली में डीजल से चलने वाली बसों और ट्रकों पर पूरी तरह रोक लगा दी गई थी और दिल्ली परिवहन निगम के पूरे बेड़े को सीएनजी चालित वाहनों में बदला गया था। परन्तु यहाँ विशेष रूप से ध्यान देने की बात यह है कि जब डीजल चालित वाहनों को प्रदूषणकारी माना गया, तो दिल्ली में डीजल चालित कारों को चलाने की अनुमति क्यों दी गई? सस्ते डीजल से चलने वाली कारों के नए-नए मॉडल बाजार में क्यों उतारे गए?

क्यों नहीं बनी हरित ईंधन नीति

प्रश्न यह भी है कि जब सर्वोच्च न्यायालय ने 1998 में ही दिल्ली में डीजल चालित वाहनों

यदि पिछले दस वर्षों में हरित ईंधन को प्रोत्साहित किया जाता और हरित ईंधन नीति बनाई जाती तो पूरे देश में वाहनों को समयबद्ध तरीके से हरित ईंधन में बदला जा सकता था। यदि ऐसा होता तो हवा इतनी प्रदूषित नहीं होती कि जिससे साँस लेना ही दूभर हो जाए।

को सीएनजी में बदलने के आदेश दिए थे, तब क्यों नहीं पूरे देश के लिए हरित ईंधन नीति बनाई गई? प्रश्न यह भी है कि जब अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व वाली एनडीए सरकार ने हरित ईंधन को प्रोत्साहित करने के लिए एथनॉल और बॉयोडीजल के उत्पादन को प्रोत्साहित किया, जिससे पेट्रोलियम ईंधन के प्रदूषणकारी घातक प्रभाव से मुक्ति पाई जा सके, जिससे इसके साथ ही देश के किसानों को भी फायदा होता तथा पेट्रोलियम पदार्थों के आयात बिल को कम किया जा सकता था, परंतु 2004 में कांग्रेस के नेतृत्व वाली यूपीए सरकार के बनते ही हरित ईंधन की उपेक्षा क्यों की गई? यदि पिछले दस वर्षों में हरित ईंधन को प्रोत्साहित किया जाता और हरित ईंधन नीति बनाई जाती तो पूरे देश में वाहनों को समयबद्ध तरीके से हरित ईंधन में बदला जा सकता था। यदि ऐसा होता तो न तो हवा इतनी प्रदूषित होती कि जिससे साँस लेना ही दूभर हो जाए और न ही हरित न्यायाधिकरण को जल्दबाजी में ऐसा फैसला लेना पड़ता, जो किसी वैज्ञानिक परीक्षण के बजाय अवैज्ञानिक तरह से समय के आधार पर वाहनों को अनुपयोगी घोषित करता हो। इस बात का क्या उत्तर है कि जो वाहन 31 दिसंबर, 2015 तक प्रदूषणकारी नहीं माना जाएगा, वह अगले ही दिन पहली जनवरी, 2016 को प्रदूषणकारी कैसे करार दे दिया जाएगा? यहाँ हम प्रदूषण नियंत्रण को लेकर हरित न्यायाधिकरण की मंशा पर प्रश्न खड़े नहीं कर रहे हैं, परंतु उन कारणों की पड़ताल करना चाहते हैं कि ऐसी स्थित क्यों आई कि न्यायाधिकरण को आनन-फानन में एक ऐसा फैसला लेना पड़ा, जो अतिवादी समझा जा रहा है?

गंगा सफाई अभियान–तीन दशकों में क्या हुआ

पर्यावरण को लेकर यह अकेला ऐसा फैसला नहीं है, जो विवादों के घेरे में रहा हो। गंगा सफाई अभियान भी

कई हजार करोड़ रुपए खर्च कर दिए जाने के बावजूद गंगा अब पहले से कहीं ज्यादा प्रदूषित हो गई! देश की कई नदियों की स्थिति तो उससे भी बदतर है। कई नदियाँ लुप्त हो गईं और कई केवल बरसाती नाले बनकर रह गई हैं!

ऐसा ही मुद्दा है। 1986 में तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने गंगा को स्वच्छ करने का संकल्प लिया था, परंतु इस संबंध में इन तीन दशकों में क्या हुआ, यह बताने की जरूरत नहीं है। कई हजार करोड़ रुपए खर्च कर दिए जाने के बावजूद गंगा अब तब से कहीं ज्यादा प्रदूषित हो गई! देश की कई अन्य नदियों की स्थिति तो उससे भी बदतर है। कई नदियाँ लुप्त हो गईं और कई केवल बरसाती नाले बनकर रह गई हैं!

गंगा सफाई के नाम पर न्यायालयों या न्यायाधिकरण से आए दिन कोई न कोई आदेश जारी होता रहता है। ऐसे ही आदेशों के तहत सबसे पहले नदियों में पुष्प आदि पूजा सामग्री के विसर्जन पर रोक लगाई जाती है। दिल्ली में भी यमुना नदी के पुलों पर ऊँचे-ऊँचे जंगले लगा कर पूजा सामग्री के विसर्जन को तो रोक दिया गया, परंतु यमुना में गंदे नालों का गिरना नहीं रोका जा सका, क्यों? यही नहीं, कानपुर के चमड़ा रँगाई कारखानों का जहरीला कचरा 24 घंटे गंगा में डाला जा रहा है, इस पर अभी तक प्रभावी रोक क्यों नहीं लगाई जा सकी? राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण के आदेश पर 27 जनवरी, 2015 को हुए एक निरीक्षण में यह बात सामने आई है कि चमड़ा रँगाई कारखानों की लापरवाही के कारण गंगा में जहरीले-प्रदूषित कचरे के साथ ही मांस के लोथड़े और हड्डियाँ भी बहाई जा रही हैं। गंगा सफाई अभियान में यह दोहरा मानदंड क्यों?

वास्तव में यह विरोधाभासी स्थिति इस कारण है कि पर्यावरण के प्रति हमारा दृष्टिकोण सम्यक् नहीं है, वरन् इस महत्त्वपूर्ण विषय पर हमारी सोच टुकड़ों-टुकड़ों में बँटी हुई है। यही कारण है कि जब भी कहीं कोई समस्या खड़ी होती है तो हम सुविधाजनक ढंग से फैसले लेते हैं और आनन-फानन में इन्हें लागू कराने का प्रयास करते हैं। ऐसा ही कुछ हुआ राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण के 10 वर्ष से अधिक पुराने डीजल वाहनों पर रोक लगाने संबंधी फैसल के अनुपालन में।

यदि पर्यावरण के प्रति हमारी समग्र और सम्यक् दृष्टि

होती तो दिल्ली को उस संकट के दौर से न गुजरना पड़ता जिसमें राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र की स्थिति दिन प्रति दिन बदतर होती जा रही है।

आज पर्यावरण मंत्रालय से लेकर प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, हरित न्यायाधिकरण, न्यायालय, एनजीओ व मीडिया तक वायु प्रदूषण, विशेषतौर पर वाहनों से होने वाले प्रदूषण के प्रति बहुत चिंतित हैं। होना भी चाहिए, क्योंकि यह हमारे और भविष्य की पीढ़ियों के स्वास्थ्य से जुड़ा मामला है। परंतु इसके साथ ही यह विचार करना भी आवश्यक है कि वायु प्रदूषण की स्थिति इतनी गंभीर क्यों हुई? वास्तविकता यह है कि देश में पिछले 25-30 वर्षों से वायु प्रदूषण की स्थिति गंभीर बनी हुई है। राजधानी दिल्ली में वायु प्रदूषण को लेकर समय-समय पर चिंताएँ व्यक्त की जाती रही हैं, परंतु केंद्र और राज्य सरकार ने इन चिंताओं को गंभीरता से लेने के बजाय इसके विपरीत निर्णय लिये, जिसके कारण दिल्ली में वाहनों की संख्या अनियंत्रित गति से बढ़ती जा रही है।

1965-66 में दिल्ली की आबादी 31.40 लाख थी और तब वाहनों की संख्या थी 80,420। 1990-91 तक आते-आते आबादी तीन गुना बढ़कर हो गई 94.20 लाख और वाहनों की संख्या बढ़ कर हो गई 19.24 लाख अर्थात् वाहनों की संख्या में वृद्धि हुई 24 गुना। वाहनों की संख्या में इस अंधाधुंध वृद्धि के कारण वायु प्रदूषण का बढ़ना स्वाभाविक ही था, जिस पर कई क्षेत्रों से चिंता व्यक्त की जाने लगी और न्यायालय ने भी सरकार को वायु प्रदूषण नियंत्रित करने के लिए आवश्यक दिशा निर्देश दिए। होना तो यह चाहिए था कि तब सरकार न्यायालय के आदेशों का अनुपालन करने के साथ ही दिल्ली में वाहनों की संख्या को नियंत्रित करने और हरित ईंधन के उपयोग को प्रोत्साहित करने की नीति अपनाती। परंतु खेद की बात यह है कि हुआ ठीक इसके विपरीत। सरकार ने न्यायालय के आदेशों का तो तत्परता से पालन किया, परंतु इन आदेशों की भावनाओं की लगातार उपेक्षा की जाती रही और यह सब हुआ सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) बढ़ाने और विकास की आड़ में।

वाहनों की संख्या में अंधाधुंध वृद्धि के कारण वायु प्रदूषण का बढ़ना स्वाभाविक ही था, जिस पर कई क्षेत्रों से चिंता व्यक्त की जाने लगी और न्यायालय ने भी सरकार को वायु प्रदूषण नियंत्रित करने के लिए आवश्यक दिशा निर्देश दिए।

अनियंत्रित गति से बढ़ते वाहन और 'किलर ब्रेथ'

1991 में प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिंहाराव के नेतृत्व वाली सरकार में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डॉ. मनमोहन सिंह को वित्त मंत्रालय की जिम्मेदारी दी गई। उस समय उन्होंने आर्थिक विकास और रोजगार का हवाला देते हुए कारों का उत्पादन बढ़ाने की पैरवी की। उनका कहना था कि एक कार से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तरीके से 8-9 लोगों को रोजगार मिलता है, अतः नए रोजगार सृजन के लिए कारों का उत्पादन बढ़ना चाहिए। कारों के उत्पादन की गति को निरंतर बनाए रखने के लिए इनका बिकना बहुत आवश्यक है, इसलिए इनकी बिक्री सुनिश्चित करने के लिए कारों के लिए बहुत कम ब्याज दर और आसान शर्तों पर बैंकों से ऋण मिलना सुनिश्चित किया गया। स्थिति यह हो गई कि किसी विद्यार्थी को उच्च शिक्षा के लिए तो बैंक ऋण नहीं देते या ऋण देने में आनाकानी करते, परंतु जब बारी कार के लिए कर्ज देने की हो तो दो-तीन

दिन में ही कर्ज के लिए स्वीकृति मिल जाती। एक प्रकार से कारों और पेट्रोलियम ईंधन चालित अन्य वाहनों के बढ़ते उत्पादन तथा इनकी बिक्री को विकास तथा संपन्नता का पैमाना मान लिया गया। परंतु तब केंद्र सरकार ने यह नहीं सोचा कि इन कारों के सड़कों पर आने से वायु प्रदूषण में कितनी वृद्धि होगी और आयातित पेट्रोलियम पदार्थों की खपत कितनी बढ़ जाएगी, जिसका विपरीत असर भारत के आयात-निर्यात व रुपए पर पड़ेगा। एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री होने के नाते डॉ. मनमोहन सिंह को कम-से-कम इस आर्थिक पक्ष पर तो गंभीरता से सोचना चाहिए था!

कारों को प्रोत्साहित करने के डॉ. मनमोहन सिंह के उक्त निर्णय का असर यह हुआ कि 2010-11 में दिल्ली में पंजीकृत वाहनों की संख्या बढ़कर 74.38 लाख और 2014-15 में 90 लाख हो गई। दिल्ली में अनियंत्रित रूप से बढ़ती संख्या के कारण वायु प्रदूषण इतना बढ़ा कि अब इसे 'किलर ब्रेथ' की संज्ञा दी जाने लगी और इस संज्ञा के बाद हरित न्यायाधिकरण व न्यायालय दिल्ली के लोगों के स्वास्थ्य के प्रति चिंतित दिखाई देने लगे। उनकी चिंता स्वाभाविक है, परंतु इसके साथ ही हमारी चिंता यह भी है कि दिल्ली में अनियंत्रित गति से पेट्रोलियम ईंधन चालित वाहनों की बढ़ती संख्या को नियंत्रित करने का कोई निर्देश इन माननीय संस्थाओं ने सरकार को क्यों नहीं दिया? जिसका दुष्परिणाम यह होगा कि इन वाहनों की संख्या इसी प्रकार अनिंयत्रित तरीके से बढ़ती रही तो वायु प्रदूषण नियंत्रित करने का कोई भी उपाय कभी भी कारगर सिद्ध नहीं होगा। इस स्थिति से किसे लाभ होगा यह बात सब जानते हैं, अतः यहाँ इसका उल्लेख करना आवश्यक नहीं परंतु वायु प्रदूषण बढ़ने से दिल्ली के नागरिकों के स्वास्थ्य पर विपरीत असर पड़ना सुनिश्चित है– अर्थात् जिस नागरिक के स्वास्थ्य के प्रति मीडिया, हरित न्यायाधिकरण और न्यायालय इतने चिंतित हैं, उसे कोई लाभ होने वाला नहीं। यह बात कहने का दुःसाहस इसलिए कर रहा हूँ कि जब डीजल से चलने वाले वाहनों से होने वाले प्रदूषण के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश का अनुपालन करते हुए दिल्ली सरकार ने वर्ष 2003 में सभी बसों को सीएनजी में तो परिवर्तित कर दिया, परंतु तब उसी प्रदूषणकारी डीजल से चलने वाली कारों के प्रयोग पर कोई रोक नहीं लगाई, जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि

चार वर्षों के भीतर ही वाहनों से होने वाला प्रदूषण एकदम बढ़ने लगा। यही नहीं, डीजल चालित कारों और अनियंत्रित तरीके से वाहनों की बढ़ती संख्या ने दिल्ली मेट्रो की प्रदूषण नियंत्रण की उपलब्धि को भी लील लिया। कल्पना कीजिए, अगर दिल्ली मेट्रो रोज 25 लाख से अधिक यात्रियों को उनके मुकाम तक न पहुँचा रही होती तो दिल्ली में प्रदूषण की स्थिति क्या होती?

कहते हैं कि 'लम्हों ने खता की, सदियों ने सजा भुगती,' अकेले दिल्ली ही नहीं वरन् पूरे देश को ऐसी ही सजा भुगतनी पड़ रही है, वित्तमंत्री के रूप में लिये गए डॉ. मनमोहन सिंह के तथाकथित विकासवादी एक निर्णय की। हाँ, यहाँ एक बात अवश्य है कि यदि वाहनों के लिए हरित ईंधन नीति बनाई जाती और डीजल व पेट्रोल के स्थान पर बायो-ईंधन व सौर तथा विद्युत् चालित वाहनों को प्रोत्साहित किया जाता, तो इससे विनाशकारी प्रदूषण से मुक्ति मिलने के साथ ही पेट्रोलियम पदार्थों के लिए देश की आयात निर्भरता कम होती और अर्थव्यवस्था को बल मिलता तथा विकास के नए आयाम खुलते। ऐसा नहीं कि बैटरी चालित बसों के प्रयोग नहीं किए गए। 1991-92 में दिल्ली में 99 बैटरी चालित 20 सीटर बसें प्रायोगिक तौर पर दिल्ली प्रशासन द्वारा चलाई गई थीं, जो बहुत लोकप्रिय हुईं, परंतु पता नहीं क्यों, इन्हें बंद कर दिया गया। दुनिया सौर हवाई जहाज को उड़ते हुए देख रही है और भारत है कि ढुलमुल नीतियों के चलते पेट्रोलियम ईंधन से आगे की कोई सोच ही नहीं।

दिल्ली में 99 बैटरी चालित 20 सीटर बसें प्रायोगिक तौर पर दिल्ली प्रशासन द्वारा चलाई गई थीं, जो बहुत लोकप्रिय हुईं। परंतु पता नहीं क्यों इन्हें बंद कर दिया गया।

वायु प्रदूषण के प्रति जिस प्रकार की ढुलमुल नीतियाँ अपनाई गईं, ऐसा ही हुआ गंगा सफाई अभियान के प्रति। यही कारण है कि मोक्षदायिनी मानी जाने वाली गंगा का जल प्रयागराज स्थित संगम पर आचमन के लायक भी नहीं रहा। जो यमुना कभी दिल्ली की जीवनरेखा मानी जाती थी, आज वही यमुना दिल्ली में गंदे नाले में बदल गई है और अब इस प्रदूषण रूपी कालिया नाग के दमन के लिए वह एक बार फिर वह कृष्ण का इंतजार कर रही है। देश की पवित्र नदियों की इस स्थिति के लिए भी विकास को लेकर हमारी आधी-अधूरी सोच ही जिम्मेदार है। इस आधी-अधूरी सोच वाले औद्योगीकरण ने तो नदियों को प्रदूषित किया ही है, इसके साथ ही तीर्थस्थलों पर पर्यटन को बढ़ावा देने के प्रयासों के तहत गंगोत्तरी और यमुनोत्तरी में बनाए गए होटलों का गंद षड्यंत्रपूर्वक सीधे गंगा व यमुना में डालने से इन पवित्र नदियों को इनके उद्गम स्थल पर ही प्रदूषित कर दिया गया। दुर्भाग्य की बात यह है कि 1986 से गंगा को प्रदूषण मुक्त करने की बातें तो बहुत की जा रही हैं परंतु इनके उद्गम स्थल पर ही हो रहे प्रदूषण को रोकने का कोई प्रयास नहीं किया गया। यही नहीं, हुआ तो यह कि पिछले दस वर्षों में इस प्रदूषण के बारे में केंद्रीय जल संसाधन मंत्रालय में जब भी कोई आवाज पहुँची उसे वहीं फाइलों में दबा दिया गया, इसके साथ ही कानपुर में चमड़ा रँगाई कारखानों के जहरीले गंद के विरुद्ध की जाने वाली किसी भी कारवाई को संविधानेतर शक्तियों के इशारों पर रोक दिया गया। यही कारण है कि हजारों करोड़ रुपए खर्च करने के बाद भी आज गंगा और यमुना 1986 से कहीं ज्यादा प्रदूषित हैं। यदि नीति निर्धारकों और नियामक संस्थाओं को वास्तव में देश के नागरिकों के स्वास्थ्य की चिंता है तो प्रदूषण नियंत्रण के लिए छुट-पुट टोटके करने के बजाय ठोस व प्रभावी कदम उठाने होंगे। ■

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं।)

अंतरिक्ष में जल की खोज

डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल

आज मानवता के समक्ष सबसे विकराल जो चुनौतियाँ मुँह बाए खड़ी हैं, उनमें पानी के स्रोतों का सूखते जाना अत्यधिक चिंतनीय है। इसीलिए मानव कहाँ-कहाँ पानी को नहीं ढूँढ़ रहा है ! अंतरिक्ष में जल की खोज से पृथ्वी पर जीवन के उद्‌भव के रहस्य को भी सुलझाने में मदद मिलेगी।

कहा जाता है कि जल ही जग का जीवन है, परंतु ग्लोबल वार्मिंग के परिणामस्वरूप निरंतर होते जा रहे मौसम परिवर्तन के कारण एक प्रकार का जल संकट भी विश्व में उत्पन्न होता जा रहा है। 'शिकागो क्लाइमेट एक्सचेंज' के संस्थापक श्री रिचर्ड सैंडर के अनुसार तो हमारी इस 21वीं सदी की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु मीठा जल ही होगी। वस्तुतः 2005 की अपेक्षा 2030 तक जल की कमी से जूझने वाली जनसंख्या के स्थानांतरण का मुख्य कारण है। संभवतः इसी कारण से तथा ज्ञान-पिपासा की शांति के लिए भी वैज्ञानिक पृथ्वी से इतर आकाशीय पिंडों पर जल की खोज में अत्यधिक रुचि ले रहे हैं।

ऐसा ही पहला पिंड है मंगल, जो हजारों वर्षों से मानवता के लिए कुतूहल का विषय रहा है। नासा के 'मॉस ऑरबाइटर' ने उत्साहवर्धक संकेत दिया है कि वहाँ वसंत

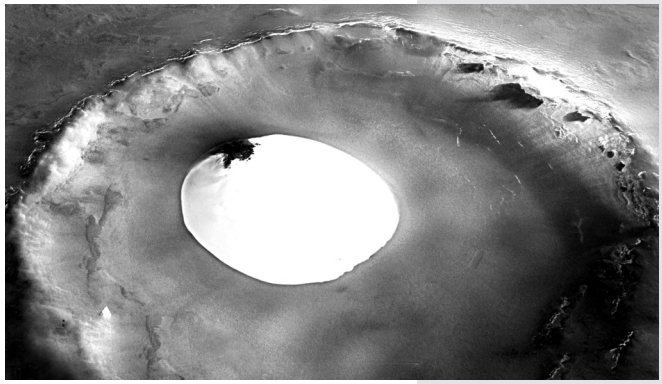

ईसए के अंतरिक्ष यान द्वारा मंगल ग्रह पर मौजूद पानी का पहली बार लिया गया फोटो : साभार नासा

के मौसम में कुछ स्थानों पर सतह पर द्रव जल की पतली परत बिछ जाती हैं, जो सर्दियों में लुप्त हो जाती है। वस्तुतः लाखों-करोड़ों वर्ष पूर्व (लगभग 4 अरब वर्ष) मंगल पर भी नदियाँ, झीलें और समुद्र थे। समुद्रों ने तो लगभग एक तिहाई ग्रह को घेर रखा था। नासा ने ही 19 दिसंबर, 2013 में घोषणा की थी कि वहाँ एक मीठे जल की सूखी हुई विशाल झील का पता लगा है। इस ग्रह पर कभी मीठे पानी की सदानीरा नदियों की उपस्थिति के भी संकेत मिले हैं। परंतु मंगल के वातावरण में ओजोन की अनुपस्थिति और ग्रह पर चुंबकीय क्षेत्र के लगभग अभाव के कारण दिन में सूर्य से बरसने वाली अत्यंत ऊर्जावान पराबैंगनी किरणों एवं शक्तिशाली चुंबकीय सौर हवाओं का प्रहार इतना तीव्र रहा कि धीरे-धीरे यह सारा ही जल सूख गया। फलस्वरूप, धीरे-धीरे यह शुष्क ग्रह में बदल गया, जहाँ रात में इक्वेटर पर तापमान-73° सें. ग्रे. तक पहुँच जाता है यद्यपि दिन में 20° सें.ग्रे. रहता है। इन हालात में ग्रह पर द्रव जल केवल वही है, जिसकी चर्चा की जा चुकी है और यह अनेक कारणों से खारा भी है, परंतु उत्तरी ध्रुव पर भारी मात्रा में मीठा जल हिम की (स्थायी) टोपी के रूप में जरूर है। दक्षिणी ध्रुव पर भी ऐसी टोपी है अवश्य, परंतु वह जल की न होकर, जमी हुई कार्बन डाईऑक्साइड गैस है। हाँ, इस टोपी के नीचे दक्षिणी ध्रुव पर भी जल से निर्मित हिम विद्यमान है। कुल मिलकर, अनुमान है कि लगभग 50 लाख घन किलोमीटर जल-हिम आज भी मंगल पर मौजूद है।

मंगल के वातावरण में ओजोन की अनुपस्थिति और ग्रह पर चुंबकीय क्षेत्र के लगभग अभाव के कारण दिन में सूर्य से बरसने वाली अत्यंत ऊर्जावान पराबैंगनी किरणों एवं शक्तिशाली चुंबकीय सौर हवाओं का प्रहार इतना तीव्र रहा कि धीरे-धीरे यह सारा ही जल सूख गया।

दूसरा आकाशीय पिंड जहाँ जल के स्पष्ट संकेत मिले हैं, शनि ग्रह का अपना चाँद टाइटन है। स्मरणीय है कि शनि के अनेक चंद्रमाओं में टाइटन एक अत्यंत ठंडा पिंड है, जिसकी सतह का औसत तापमान-179° सें.ग्रे. है और जहाँ सूर्य प्रकाश नाममात्र को ही होता है। स्पष्ट है कि टाइटन के अत्यंत ठंडे पिंड होने का राज यही है। बड़ा विचित्र पिंड है, यह प्रकृति का अजूबा। यहाँ बहुत सारी झीलें व समुद्र हैं और संभवतः नदियाँ भी, परंतु इनमें जल नहीं, द्रव हाइड्रोकार्बन हैं, मीथेन, ईथेन आदि। ये यौगिक सामान्यतः गैसे होती हैं, परंतु यहाँ के अत्यंत ठंडे वातावरण में द्रवीभूत होकर उसी अवस्था में अस्तित्व में हैं। इससे भी आश्चर्य की बात है कि

एक अन्य आकाशीय पिंड, जहाँ जल की उपस्थिति के स्पष्ट संकेत मिले हैं, हमारा अपना चंद्रमा है। चंद्रमा अभी तक एक निर्जीव पिंड ही समझा जाता था, परंतु भारत के चंद्रयान प्रथम ने अंतिम रूप से सिद्ध कर दिया कि वहाँ मीठे जल की उपस्थिति प्रचुर मात्रा में है, जो चंद्रतल के नीचे अनंत जलराशि के रूप में लहरा रहा है।

संपूर्ण पिंड अतिशय ठंड के कारण चट्टान की भाँति कड़े हो गए जल-हिम तथा सामान्य पथरीले पदार्थ से बना हुआ है और इस प्रकार की एक अत्यंत मोटी सतह के नीचे लहरा रहा है, पृथ्वी के समुद्रों से भी अधिक खारा विशाल जलीय महासागर। इस जल में सोडियम, पोटैशियम, अमोनियम सल्फेट आदि अकार्बनिक पदार्थ हैं तथा और बहुत कुछ जो इसे खारा बनाते हैं। संपूर्ण टाइटन की अंदर की परत में मौजें मार रहा यह महासागर ही इस पिंड पर जल का सुरक्षित भंडार है।

यों तो शनि ग्रह पर भी जल है, परंतु अत्यंत थोड़ी मात्रा में। जल तो लगता है, उसके चंद्रमाओं पर ही है। ऊपर हमने टाइटन की चर्चा की। छोटे चाँद एनसिलेडस (व्यास-500 कि.मी.) पर भी प्रचुर मात्रा में जल के संकेत मिले हैं। 2004 से ही अंतरिक्ष यान 'कैसिनी' द्वारा शनि संबंधी जानकारियाँ जुटाते रहने के दौरान यहाँ भी दक्षिणी ध्रुव से फटती जल-हिम तथा जल-वाष्प की मिली-जुली फुहारों का पता लगा। एनसिलेडस की बर्फीली भूमि के नीचे खारे जलीय महासागर के भी संकेत मिले हैं। इस महासागर के गरम जल (9° सें.ग्रे.) की फुहारें भी फूटकर एनसिलेडस की धरती के ऊपर तक आती देखी गईं।

एक अन्य आकाशीय पिंड, जहाँ जल की उपस्थिति के स्पष्ट संकेत मिले हैं, हमारा अपना चंद्रमा है। चंद्रमा अभी तक एक निर्जीव पिंड ही समझा जाता था, परंतु भारत के चंद्रयान प्रथम ने अंतिम रूप से सिद्ध कर दिया कि वहाँ मीठे जल की उपस्थिति प्रचुर मात्रा में है, जो चंद्रतल के नीचे अनंत जलराशि के रूप में लहरा रहा है और उसके ध्रुवों पर हिम के रूप में भी अकूत मात्रा में उपस्थित है। आज भी चंद्रतल से दानवाकार धूमकेतु टकराते रहते हैं, इन धूमकेतुओं की संरचना में यथेष्ट जल हिम के रूप में मौजूद होता है और यही ध्रुवों की हिम को नवीकृत भी करता रहता है। चंद्रमा का वह भाग, जो सूर्य का सामना कर रहा होता है दिन में 117° सें.ग्रे. तक तप जाता है और इसी कारण धूमकेतुओं का जल केवल ध्रुवों पर कैद होकर रह पाता है। द्रव जल चंद्रमा की ऊपरी परत के नीचे ही उपस्थित होता है। मूलतः चंद्रमा का सारा जल उसे अवश्य ही अपनी माँ अर्थात् हमारी पृथ्वी से विरासत के रूप में प्राप्त हुआ होगा, जब वह टूटकर उससे अलग हुआ था। शुक्र ग्रह पर तो संभवतः जल नहीं है, परंतु बुध जो सूर्य के निकटतम है और जहाँ दिन का ताप 400° सें.ग्रे. से भी अधिक रहता है, पर नासा के ही 'मेसेंजर' यान से ध्रुवों पर मीठे जल के हिम की 30 सेंटीमीटर तक मोटी परत प्रेक्षित की है। बुध के भयंकर ताप को देखते हुए यह भी एक अजूबा ही है। अंतरिक्ष में जल प्रचुर मात्रा में है, यद्यपि उपलब्ध हो सकने वाला मीठा जल तो कम ही लगता है।

यों तो शनि ग्रह पर भी जल है, परंतु अत्यंत थोड़ी मात्रा में। जल तो लगता है, उसके चंद्रमाओं पर ही है।

(लेखक एम.डी.यू. के रसायन विभाग तथा आई.एस.सी. के रसायन खंड के पूर्व अध्यक्ष हैं)

सबको स्वास्थ्य कैसे पहुँचें लक्ष्य तक

डॉ. ज्योत्स्ना

ओषधि की सूत्र रूप में एक परिभाषा है कि 'जो रोग का शमन करे और अन्य रोग को उत्पन्न न करे।' इसलिए कोई भी द्रव्य जो रोग को दूर करे और किसी अन्य रोग को उत्पन्न करे, उसे हम ओषधि कहते हैं। हमें एक बार इस दृष्टि से अंधाधुंध बाँटी जाने वाली दवाओं का आकलन करना चाहिए। हमारा उद्देश्य सिर्फ सबको स्वास्थ्य का लक्ष्य ही होना चाहिए।

सभी को स्वास्थ्य, का सरकार का उद्घोष हमेशा मेरे मन को छूता रहा है, क्योंकि स्वास्थ्य भी मूलभूत आवश्यकता है। गाँवों में घूमना और समझना भी मेरा शौक रहा है। मैंने गाँवों में स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को जब देखा और समझने की कोशिश की तो मन बेचैन रहा कि वे कौन से उपाय हो सकते हैं, जिनसे हम 'हम सभी को स्वास्थ्य' के लक्ष्य को छू सकते हैं। मैं आज कुछ ऐसी घटनाएँ-प्रसंग बताना चाहूँगी, जिससे सब उस स्थिति, उस चुनौती का अनुभव कर पाएँगे। अलवर के एक गाँव में मैंने एक घर में बहुत कमजोर हो गए एक युवा को ज्वरग्रस्त देखा तो पूछा कि इनका इलाज क्यों नहीं करवाया? घर की महिला ने बताया कि एक डॉक्टर लगातार दूसरे दिन आते हैं और दो दिन की दवाई दे जाते हैं। पैसा भी अच्छा-खासा लग रहा था।

दवाई का कोई पत्रक उनके पास नहीं था, क्योंकि उन्हें सिर्फ कई प्रकार की गोलियाँ ही दी जाती थीं। मैंने पूछा जब इतने दिन हो गए तो आपने किसी दूसरे डॉक्टर को क्यों नहीं दिखाया? उन्होंने बताया कि उनके डॉक्टर साहब कह गए हैं कि इन्हें पहले मलेरिया था और उसके ठीक होने से पहले ही वह टॉयफायड में बदल गया है। मलेरिया और टॉयफायड दोनों ही शब्द महिला को मालूम थे। उसकी बात का लहजा बताता था कि उसे ऐसा समझाया गया कि रोगी छोटे खतरे से बड़े खतरे की ओर चला गया है। किंतु मैं व्यथित थी इस बात को लेकर कि इस महिला और ऐसी अनेक को यह कैसे समझाऊँ कि मलेरिया मलेरिया है और वह टॉयफायड में नहीं बदलेगा। ये दोनों अलग प्रकार के बुखार हैं। कभी लग रहा था कि चिकित्सक को तो देखूँ, वह महोदय खुद भी यह जानते हैं या नहीं। कहीं कुछ कम, कहीं कुछ ज्यादा हमारे गाँव ऐसी ही स्थिति से गुजर रहे हैं। लेकिन गाँवों में अंधाधुंध दवाइयाँ बँट रही हैं। यदि गोली से आराम नहीं, तो सुई लगाओ, थोड़े पैसे ज्यादा लगेंगे, नहीं तो बोतल चढ़ाओ और थोड़े ज्यादा लगेंगे। कभी इसका कोई आकलन नहीं किया गया, हमने आजतक सोचा ही नहीं कि इस प्रकार क्या हम चिकित्सा उपलब्ध करा रहे हैं ? कहीं ऐसा तो नहीं कि अनावश्यक दवाइयों के द्वारा हम उनका नुकसान ही कर रहे हैं ?

दूसरी ओर गाँवों से दूर हमारे बहुत प्रसिद्ध चिकित्सकों, समर्थ लोगों के बारे में भी सोचकर मुझे आश्चर्य ही होता है। कुछ दिन पहले अखबारों में पढ़ा कि देश के एक नामी चिकित्सक ने सूचना दी कि उन्होंने बजट से पहले प्रधानमंत्रीजी से निवेदन किया है कि स्वास्थ्य बीमा की राशि की सीमा यदि बढ़ा दी जाए तो हम ज्यादा चिकित्सा सेवाओं को आसानी से उपलब्ध करा सकेंगे। आखिर हम लोग कहाँ पहुँच गए? हमारे चिकित्सकों के दायित्व बोध को क्या हो गया? चीन की पुरानी कहानियों में एक बार पढ़ा था कि चिकित्सक को रोज अपने घर की छत पर उतनी मोमबत्ती जलानी होती थीं, जितने रोगी उसके पास उस दिन आए। हर चिकित्सक को ऐसा करना होता था, उसका अपना एक क्षेत्र होता था और जिसकी छत पर जितनी कम मोमबत्ती होती थी, वह उतना ही अच्छा चिकित्सक माना जाता था। यानी उसका दायित्व पहले था कि लोगों को चिकित्सा की आवश्यकता कम पड़े। मेरा इन घटनाओं को लिखने का यह मतलब नहीं है कि हमें चिकित्सा सेवाओं का विस्तार नहीं करना चाहिए। हमारे हर नागरिक को आवश्यकता पड़ने पर वह मिलनी ही चाहिए, यह सरकार और हम सभी चिकित्सकों का दायित्व है। लेकिन हमारे देश की स्थिति को देखते हुए ऐसे उपायों पर भी मेहनत करने की आवश्यकता है, जिससे हम अपने सीमित संसाधनों पर दबाव कम कर सकें। स्वास्थ्य का विस्तार हो और देश पर भी अनावश्यक बोझ न रहे तथा सभी को स्वास्थ्य के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि हम अपने ऐसे रास्ते खोजें, जो आज हमारी चुनौती का सामना कर सकें।

मेरा विषय आयुर्वेद है और यह ज्ञान बहुत लंबे समय से देश की स्वास्थ्य सेवाओं का आधार था। हमारे देश

चीन की पुरानी कहानियों में एक बार पढ़ा था कि चिकित्सक को रोज अपने घर की छत पर उतनी मोमबत्ती जलानी होती थी, जितने रोगी उसके पास उस दिन आए। हर चिकित्सक को ऐसा करना होता था, उसका अपना एक क्षेत्र होता था और जिसकी छत पर जितनी कम मोमबत्ती होती थी, वह उतना ही अच्छा चिकित्सक माना जाता था। यानी उसका दायित्व पहले था कि लोगों को चिकित्सा की आवश्यकता कम पड़े।

की इतनी विविध पारिस्थितिकी है कि विभिन्न प्रकार की भूमि और विविध मौसम (तापमान) होने से देश में जैव विविधता की भरमार है। यह एक ऐसा देव प्रदत्त संसाधन हमारे पास है कि हमें उस पर निर्भरता बढ़ानी चाहिए। जन जीवन में इनके उपयोग को बढ़ावा न देने से उन्हें ये अनुपयोगी लगने लगे हैं और इससे जैव विविधता का संरक्षण भी नहीं हो पा रहा है। यदि समाज में इन संसाधनों की उपयोगिता को फिर स्थापित किया जाए तो जैव विविधता व स्वास्थ्य दोनों का संरक्षण साथ-साथ हो जाएगा।

हमारे अपने चिकित्सा शास्त्रों में वह दृष्टि है कि यहाँ किसी भी पैथी (चिकित्सा पद्धति) का विरोध नहीं है। सूत्र रूप में ओषधि की एक परिभाषा है कि 'जो रोग का शमन करे और अन्य रोग को उत्पन्न न करे।' इसलिए कोई भी द्रव्य जो रोग को दूर करे और किसी अन्य रोग को उत्पन्न न करे उसे हम ओषधि कहते हैं। हमें एक बार इस दृष्टि से अंधाधुंध बाँटी जाने वाली दवाओं का आकलन करना चाहिए। हमारा उद्देश्य सिर्फ सबको स्वास्थ्य प्रदान करना ही होना चाहिए।

इस कॉलम के माध्यम से मेरा प्रयास रहेगा कि हम हर बार किसी एक रोग की सामान्य जानकारी लें और आवश्यकतानुसार अपने परंपरागत ज्ञान और आस-पास या घर में उपलब्ध साधनों से ही उससे छुटकारा पाएँ तथा निरर्थक दवाओं का उपयोग न करें। साथ ही मेरा प्रयास रहेगा कि एक पौधे के विभिन्न उपयोगों की भी जानकारी मैं साथ-साथ दूँ, जिससे हम उनकी उपयोगिता समझकर, पौधों और परंपरागत ज्ञान के संरक्षण में सहयोगी बनें।

यह समझना बहुत जरुरी है कि बुखार कोई रोग नहीं है, बुखार किसी अन्य रोग का एक लक्षण मात्र है। यह शरीर की एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया है, जब वह किसी संक्रमण (इंफेक्शन) से लड़ रहा होता है। शरीर में तापमान बढ़ाकर शरीर संक्रमण को खत्म करने का काम करता है।

इस बार बुखार के विषय में कुछ सामान्य जानकारियों के साथ गिलोय के उपयोग बताएँगे।

बुखार

बुखार क्या है ? शरीर के सामान्य तापमान (98.4° फा.) के बढ़ने को बुखार कहते हैं। यह समझना बहुत जरूरी है कि बुखार कोई रोग नहीं है, बुखार किसी अन्य रोग का एक लक्षण मात्र है। यह शरीर की एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया है, जब वह किसी संक्रमण (इंफेक्शन) से लड़ रहा होता है। शरीर में तापमान बढ़ाकर शरीर संक्रमण को खत्म करने का काम करता है। कई बार कमजोरी भी बुखार का एक कारण हो सकती है। बुखार किसी भी वायरल, बैक्टीरियल या फंगल संक्रमण से होता है। हर प्रकार के रोग में ताप आने का तरीका और बुखार टूटने की अपनी विशेषता होती है, जिससे रोग को समझना आसान हो जाता है। जैसे अलग-अलग कारणों से बुखार की तीव्रता अलग-अलग होती है–

1 **साधारण बुखार**– कमजोरी, थकान, चोट, कान या दाँत के संक्रमण से होता है।

2 **मध्यम बुखार**– मूत्र मार्ग का संक्रमण, टी.बी. (तपेदिक) आदि से।

3 **तेज बुखार**– लू लगने पर, मलेरिया, न्यूमोनिया, खसरा, टॉयफायड आदि में होता है।

क्योंकि बुखार किसी अन्य रोग का लक्षण है, इसलिए रोग की पहचान करना आवश्यक है। तभी उचित चिकित्सा

मिलेगी और अनावश्यक दवाइयों से बच सकेंगे। ऐसे में तुरंत बुखार उतारने वाली दवाइयाँ न दें, बल्कि तापमान देखते रहें, क्योंकि हर बुखार का बढ़ने और घटने का अपना तरीका (पैटर्न) है, जैसे–

1. मलेरिया में कँपकँपी के साथ बुखार आता और बढ़ता है तथा बहुत पसीने के बाद छुटता है।
2. जो बुखार रोज-रोज थोड़ा बढ़ता है (सीढ़ी की तरह) वह टॉयफायड हो सकता है। इसी प्रकार छुटता है। बीच में एकदम से सामान्य तापमान पर नहीं आना।
3. तपेदिक (टी.बी.) का रोगी शाम होने पर बुखार की शिकायत करता है और तपेदिक के अन्य लक्षण भी मिलते हैं।

अतः ये सब कुछ बुखारों को पहचानने के तरीके हैं। इन सभी में इस प्रकार के तापमान के अलावा उस रोग के अन्य लक्षण भी साथ-साथ मिलेंगे। इस प्रकार हम रोग की ठीक पहचान कर सकते हैं। किंतु किसी भी अवस्था में यदि बुखार तेज हो (104° फा. से ऊपर) रोगी बेचैन हो, किसी भी मार्ग से खून आ रहा हो, रोगी प्रलाप कर रहा हो, तो कभी भी स्वयं किसी प्रयास में समय व्यर्थ न करें और तुरंत रोगी को अस्पताल ले जाएँ। लेकिन सामान्य अवस्था में, क्योंकि रोगी के शरीर का तापमान संक्रमण से लड़ने के लिए बढ़ा है, वह ही शरीर का अपना तरीका है, जिससे वह बैक्टीरिया या वायरस को खत्म करता है। अतः यदि व्यक्ति बेचैन नहीं है तो 102° फा. तक आप बुखार को तुरंत उतारने की कोशिश न करें, शरीर को थोड़ा समय दें और अन्य प्रकट होने वाले लक्षणों से सही रोग की पहचान होने में मदद करें। अच्छी नींद लेने दें, रोगी को खूब आराम करने दें, गरम पानी को धीरे-धीरे पीते रहें, जिससे शरीर की नमी बनी रहे तो आप शरीर को रोग से लड़ने में मदद देंगे। आयुर्वेद में कहा है 'नव ज्वरे लघनं श्रेष्ठां' यानी नए बुखार में लघन करें और दोषों का पाचन होने दें।

किंतु बच्चों में विशेष सावधानी बरतें। बहुत छोटे बच्चों में 100° फा. के बाद तुरंत चिकित्सक से संपर्क करें। लेकिन बड़े बच्चों में आप देखते हैं कि बच्चे बुखार में भी खेलते रहते हैं, ऐसे में आप उसे सिर्फ आराम कराने का प्रयास करें। यदि बच्चा सुस्त नहीं हो रहा है तो शरीर को थोड़ा समय दें। शरीर स्वयं सँभल जाएगा।

बच्चों में विशेष सावधानी बरतें बहुत छोटे बच्चों में 100° फा.के बाद तुरंत चिकित्सक से संपर्क करें। बड़े बच्चों में आप देखते हैं कि बच्चे बुखार में भी खेलते रहते हैं।

यदि बुखार बहुत तेज हो तो बुखार हल्का करने का प्रयास करें और चिकित्सक के पास जाएँ। कुछ सामान्य उपाय करें, जैसे-यदि ठंड नहीं लगी है यानी न्यूमोनिया नहीं है, ठंड का मौसम नहीं है तो शरीर को ढकें नहीं, खुला रखें। ठंडे पानी की पट्टी रखें, हवा करें, स्पंज करें। अगर लू लग गई हो तो ठंडे स्थान पर रखें, तरल पदार्थ पीने को देते रहें एवं चिकित्सक से संपर्क करें।

बुखार की अवस्था में कुछ घरेलू उपाय रोगी के शरीर की मदद करते हैं–

1. काली मिर्च 3-4 दानों के चूर्ण को शहद में मिलाकर चाटें, अथवा
2. काली मिर्च, अदरक के काढ़े में शहद या चीनी या मिश्री मिलाकर लें, अथवा
3. 10 पत्ते तुलसी अकेले या काली मिर्च के साथ काढ़ा या चाय में लें, अथवा
4. 10 मुनक्का भिगोकर, पीसकर, गरम कर काली मिर्च के साथ लें, अथवा

गिलोय विशेष रूप से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाती है, इसीलिए अमृता है। गिलोय की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के गुण के लिए अमेरिका में इस का पेटेंट हो चुका है। जरूरत है अपने इस खजाने को सहजने और सँभालने की।

5. लहसुन की 5-6 कलियाँ उबालकर लें, अथवा
6. तुलसी, अदरक, काली मिर्च का काढ़ा लें, अथवा
7 दालचीनी का पानी पकाकर लें।
8. पानी में केसर उबालकर लें।
9. गिलोय का काढ़ा लें, इसमें तुलसी भी मिला सकते हैं।

गिलोय

गिलोय को अमृता भी कहा गया है, क्योंकि यह अमृत के समान फल देने वाली है। हमारे यहाँ पूरे देश में पाई जाती है और अनेक रूप में उपयोगी है–

1. बुखार में इसके रस में पिप्पली और शहद मिलाकर दें।
2. गिलोय, पित्तपापड़ा, चिरायता, सोंठ, नागरमोथा का काढ़ा पुराने बुखार में देने से बुखार ठीक होता है और रोगी की ताकत बनी रहती है। इसमें मुनक्का भी डाल सकते हैं।
3. अम्लपित्त (एसिडिटी) और अपचन में गिलोय के सत्त्व को घी और काली मिर्च के साथ लें।
4. अँगूठे की मोटाई की गिलोय को एक बालिश्त की लंबाई में काटकर, कूटकर डूबने लायक पानी में भिगो दें, फिर मसलकर छानकर पीने से यह पुराने बुखार को दूर करती है, शक्ति देती है (रसायन है) और मूत्रजनन कर शरीर का शोधन कराती है।
5. गिलोय का उपयोग भूख बढ़ाता है।
6. गिलोय का रस शहद और गुड़ के साथ देने से दुर्बलता दूर होती है।
7. बवासीर के मस्सों में आराम के लिए गिलोय के चूर्ण को या रस को मट्ठे (छाछ) के साथ लें।
8. त्वचा के रोगों में गिलोय, नीम, हल्दी,आँवले के साथ प्रयोग करें।
9. पीलिया में गिलोय के पत्तों व तने के रस में शहद मिलाकर सुबह-सुबह दें।
10. पीलिया में पत्तों की चटनी मट्ठे से दे सकते हैं।
11. मधुमेह (डायबिटीज) में गिलोय, हल्दी, आँवला का काढ़ा लें।
12. मधुमेह में इसके स्वरस को पाषाणभेद चूर्ण और शहद से दें।
13. पैरों में जलन होने पर इसका लेप जलन दूर करता है।
14. गिलोय को त्रिफला के साथ लेने से आँखों की कमजोरी दूर होती है।

गिलोय विशेष रूप से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाती है, इसीलिए अमृता है। गिलोय की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के गुण के लिए अमेरिका में इस का पेटेंट हो चुका है। हमें जरूरत है अपने इस खजाने को सहजने और सँभालने की। ■

(लेखिका आयुर्वेद की वरिष्ठ चिकित्सक हैं)

काव्य किंजल

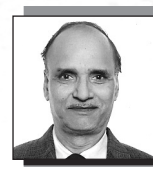

डॉ. रामसनेही लाल वर्मा
'यायावर'

क्षरण ही क्षरण बंधु !

विकृति संस्कृति को
ललकारे
हर ओर
क्षरण ही क्षरण बंधु !

सन्नाटा बुनता अँधियारा
अब चीख रही
'दामिनी' विवश
देवालय के उजले आँगन में
नाच रही निर्लज्ज हवस
सर्वमंगला, सत्त्व, शुभांगी
झेले बेबस अपहरण बंधु !
चोरी हो गई
सुवास-सुमन
आरोपित है भोली तितली
रोबोट खा गया
पचा गया
गांधी जी की छोटी तकली
कितने अमृत-घट लाओगे
हर ओर
मरण ही मरण बंधु !

विकृति संस्कृति को
ललकारे
हर ओर
क्षरण ही क्षरण बंधु !

तिनके-सा उड़ता स्वस्तिक

पछुआ के अंधड़ में
तिनके-सा उड़ता स्वस्तिक।
गोली-कंचे वाले
हाथों में आया बल्ला
मौन हुआ
संकेतों का स्वर
चैटिंग का हल्ला।
फैशन चैनल के हाथों से
हार गई पुस्तक।
है उदास
तुलसी चौरे पर रखा हुआ दियना
सहमी-सहमी
राखी लिये
उदास खड़ी बहना
इच्छाओं की आग
जलाती है हर पल मस्तक।

लॉफ्टर चैनल के
पंजे में
काँपे चौपाई
'कालिदास' औ 'मेघदूत'
के बीच, बढ़ी खाई
पूत कमाल कहे
यह बापू
है कितना बुड़बक।

पछुआ की आँधी में
तिनके-सा उड़ता स्वस्तिक।

(कवि से. नि. एसोसिएट प्रोफेसर हैं।)

संस्कृति का सूरज

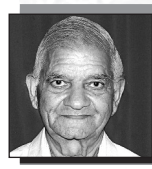

डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा

आओ अपनी संस्कृति के सूरज को शीश झुकायें।
भारतीयता के भावों का, घर-घर अलख जगायें।।

यह संस्कृति का सूरज निकला, वैदिक ज्ञान-गगन में।
अद्भुत आभा भरी हुई थी,ऋषियों के चिंतन में।।
लीन रहा करता जन-मन, बहुदेवों के पूजन में।
एक ब्रह्म भासित होता था, इंद्र, वरुण पूषण में।।
आओ, भेदों में अभेद के, दर्शन को अपनायें।
आओ अपनी संस्कृति के, सूरज को शीश झुकायें।।

मानवता से नहीं बड़ा है, कोई धर्म धरा पर।
विष्णुदेव मानव-हित उतरे, मनुज-रूप धारण कर।।
कृष्ण-रूप में कंस मारकर, सरसाया सुख-सागर।
ग्वाल-बाल के संग खेलते-खाते थे नट-नागर।।
इस समता-स्वातंत्र्य-बोध पर, आओ बलि-बलि जायें।
आओ, अपनी संस्कृति के सूरज को शीश झुकायें।।

सदाचार ही धर्म-मर्म है, सुखी सदा सत्कर्मी।
फल की इच्छा त्याग, कर्मरत रहता ज्ञानी, मर्मी।।
हे अर्जुन तुम दुराचार की दलदल में मत फँसना।
दुष्कर्मी से लड़ते-लड़ते, हँसते-हँसते मरना।।
गीता के इस विमल ज्ञान को जीवन-सत्य बनायें।
आओ, अपनी संस्कृति के सूरज को शीश झुकायें।।

यह सारा जग ब्रह्म-रूप है, मानव ही है ईश्वर।
मानव-महिमा का यह चिंतन विरल, मनोरम, भास्कर।।
श्री रामानुज, वल्लभ, तुलसी, गांधी और शंकर।
सबने सोया राष्ट्र जगाया, यह चिंतन अपना कर।।
आओ, इस ब्राह्मी दर्शन को जन-जन तक पहुँचायें।
आओ, अपनी संस्कृति के सूरज को शीश झुकायें।।

(कवि हिंदी के उद्भट विद्वान् व समीक्षक हैं)

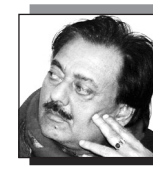

डॉ. प्रमोदकुमार दुबे

लोकायत और मार्क्सवाद

आज सनातन धर्म के खिलाफ शिक्षा से लेकर साहित्य, संस्कृति, समाज, राजनीति और मीडिया तक सर्वत्र वर्ग संघर्ष के समीकरणों की रण–भेरियाँ बज रही हैं। इसलिए वैदिक सनातन–धर्म और आस्तिक दर्शन के वास्तविक तथ्यों को सामने लाकर इन मिथ्या आरोपों की घेराबंदी तोड़ना आवश्यक है, इनसे जनमानस को मुक्ति दिलाए बिना राष्ट्र एकात्मता की कल्पना तक नहीं की जा सकती है।

कौटिल्य ने आन्वीक्षकी की स्थापना करते हुए बताया है कि मनु के अनुयायी आचार्य त्रयी, वार्त्ता और दंडनीति मानते थे। इन तीनों में त्रयी को अधिक महत्त्व देते थे। बृहस्पति के अनुयायी त्रयी को महत्त्व न देकर वार्त्ता और दंडनीति को अनिवार्य मानते थे। शुक्र के अनुयायी दंडनीति को ही महत्त्वपूर्ण मानते थे। कौटिल्य ने चारों को महत्त्वपूर्ण माना और सांख्य, योग तथा लोकायत से आन्वीक्षकी की स्थापना की 'सांख्यं योगो लोकायतं चेत्यान्वीक्षकी' (कौ.1.1)। पार्थिव सुख के लिए रचे गए कौटिल्य के अर्थशास्त्र का लोकायत

त्रयी के नियमन में है, अर्थात् वेद के साथ है–'सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयस्त्रयी' (कौ. 1.2)। कौटिल्य यह घोषित करते हैं कि त्रयी-धर्म से रक्षित प्रजा कभी दुखी नहीं, सदा सुखी रहती है– 'त्रय्या हि रक्षितो लोकः प्रसीदति नसीदति' (कौ.1.2)।

लोकायत अर्थात् चार्वाक के नास्तिक भौतिक दर्शन के आचार्य बृहस्पति हैं। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के आरंभ में देवताओं के गुरु बृहस्पति और असुरों के गुरु शुक्राचार्य को नमन किया है– 'नमः शुक्रबृहस्पतियाम्'। इन दोनों आचार्यों के नमन का अभिप्राय यह है कि शुक्र और बृहस्पति उन्हीं सोम और अग्नि कुलों के ऋषि हैं, जिनसे जगत् निर्मित हुआ है। शुक्र भृगु कुल के हैं, ये सोमात्मक हैं और बृहस्पति अंगिरस कुल के हैं, ये आग्नेय हैं। जगत् अग्नि और सोम से बना है। ये दोनों अर्थशास्त्रीय धारणाओं से संबद्ध तो हैं ही, लोक और वेद से भी अभिन्न हैं। संप्रदाय प्रबोधनी शिक्षा के श्लोक संख्या-23 से ज्ञात होता है कि वेदाध्ययन आरंभ करने के पहले गणपति, सरस्वती, सूर्य सहित शुक्र और बृहस्पति दोनों आचार्यों का स्मरण किया जाता है। कौटिल्य ने भी अर्थशास्त्र की रचना करते हुए दोनों आचार्यों को नमन किया।

चूँकि कौटिल्य ने पार्थिव सुख के लिए अर्थशास्त्र की रचना की, भौतिक सुख को महत्त्व देने वाले चार्वाक दर्शन के प्रथम प्रवर्तक आचार्य बृहस्पति के लोकायत को आन्वीक्षकी का आधार लिया। बृहस्पति के चार्वाक दर्शन अर्थात् लोकायत में अर्थ और काम दो ही पुरुषार्थ हैं। 'अर्थकामौ पुरुषार्थौ (बार्हस्पत्यसूत्र-27)। लोक में इन्हीं दोनों पुरुषार्थों की प्रधानता है। भारतीय चिंतनधारा में अर्थ और काम के शास्त्र भी प्रतिष्ठित हैं। सुख की कामना सभी दर्शनों में है, सांख्य-योग, न्याय-वैशेषिक, मीमांसा-वेदांत, बौद्ध-जैन आदि आस्तिक और नास्तिक सभी दर्शनों का लक्ष्य सुख है, कोई आत्मिक सुख को लक्ष्य बनाता है तो कोई ऐहिक सुख को और कोई त्याग की भावना से वय-वर्गानुसार जागतिक सुख-साधनों के संग्रह तथा भोग की बात करता है।

मार्क्स मार्गियों ने भारत में मार्क्सवाद को स्थापित करने के लिए लोकायत को झटका और नास्तिक-आस्तिक के बीच ऐसी गहरी खाई दिखलाई, मानो इनमें न तो कभी कोई संबंध था और न ही भविष्य में कोई संबंध हो सकता है।

यह जानते हुए कि वेद-त्रयी के साथ कौटिल्य ने भौतिक दर्शन लोकायत को अर्थशास्त्र का आधार बनाया है, मार्क्स मार्गियों ने भारत में मार्क्सवाद को स्थापित करने के लिए लोकायत को झटका और नास्तिक-आस्तिक के बीच ऐसी गहरी खाई दिखलाई, मानो इनमें न तो कभी कोई संबंध था और न ही भविष्य में कोई संबंध हो सकता है। इसी मानसिकता से दर्जनों विदेशी अध्येताओं के उद्धरण लेकर देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय ने लोकायत पर लेखन किया। ऐसा लगता है कि 'लोकायत' के लेखक चट्टोपाध्याय को प्रामाणिकता से अधिक लोकायत के हरण की चिंता है, जब कि वे जानते हैं कि 'कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में सांख्य और योग के साथ-साथ लोकायत का उल्लेख भी किया है और इसे तर्क विज्ञान अर्थात् आन्वीक्षिकी कहा है' (लोका. 21)। 'सांख्य और योग दो सनातन दर्शन कहे गए हैं, जो सभी वेदों के समान थे। कौटिल्य ने केवल तीन दार्शनिक मतों का नाम लिया है– सांख्य, योग और लोकायत' (लोका. पृ.-290)। लेकिन चट्टोपाध्याय वेद त्रयी से संबंधित कौटिल्य के लोकायत

को दूर ही रखना चाहते हैं, क्योंकि वेद-त्रयी लोकायत को मार्क्सवाद की खेती के लिए जमीन बनाने में बाधक बनती है। शायद इसीलिए चट्टोपाध्याय को आस्तिक और नास्तिक दोनों प्रकार के दर्शनों को आधार देने वाले सांख्य दर्शन से भी बड़ी परेशानी है, क्योंकि इस दर्शन से वैदिक और आगमिक मत-वादों में एकत्व दिखाई देता है और प्रत्यक्ष के साथ परोक्ष का संबंध भी। यह दर्शन जगत् को द्वंद्वात्मक नहीं, त्रिगुणात्मक मानता है। यह द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और वर्गसंघर्ष के लिए उपयोगी नहीं है। इस परेशानी से बचने के लिए उन्होंने वर्तमान सांख्य दर्शन की प्रामाणिकता पर ही सवाल उठा दिया। वे एक ओर कहते हैं कि 'एक मूल सांख्य था जो लुप्त हो गया (लोका. पृ. 283), दूसरी ओर गार्बे को उद्धृत कर बताते हैं कि 'ईसा पूर्व पहली शताब्दी से महाभारत और मनु संहिता से आरंभ होने वाला सारा भारतीय साहित्य विशेषकर पौराणिक कथाएँ और श्रुतियाँ, जहाँ तक दार्शनिक चिंतन का संदर्भ है- सांख्य विचारों से भरी पड़ी है' (लोका. पृ. 286)। तीसरी ओर बताते हैं कि 'गुणरत्न ने तर्करहस्य दीपिका-99 में सांख्य के दो अलग-अलग मतों– मौलिक सांख्य और उत्तर सांख्य की चर्चा की'। 'दासगुप्ता ने कहा कि, मूल सांख्य वही रहा होगा, जैसा कि चरक ने वर्णन किया था। महाभारत में जनक को जिस सांख्य का ज्ञान कराया गया है, वह चरक के सांख्य से मेल खाता है।' गार्बे के हवाले से ही बताया गया है कि 'प्राचीन भारतीय दर्शन का नाम सांख्य है, सांख्य बौद्ध काल से पूर्व था, बल्कि वास्तव में बौद्ध दर्शन इसी से विकसित हुआ। बुद्ध के जन्मस्थान कपिलवस्तु का नाम संभवतः कपिल ऋषि के नाम पर रखा गया था।' 'अश्वघोष ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि बौद्धमत की व्युत्पत्ति सांख्य दर्शन से हुई। बुद्ध के दोनों उपदेशक आडार कालाम और उद्दक रामपुत्त सांख्यमत के समर्थक थे' (लोका. पृ. 290)। चट्टोपाध्याय ने यह भी बताया है कि विशेषकर कठ, मैत्री, श्वेताश्वतर, प्रश्न इत्यादि उपनिषदों में सांख्य नाम और उसकी विशिष्ट पारिभाषिक शब्दावली मिलती है। लेकिन चट्टोपाध्याय द्वारा उद्धृत इन तथ्यों से यह तो नहीं ज्ञात होता कि सांख्य केवल बौद्धमत से संबंधित है, बल्कि यह ज्ञात होता है कि सांख्य सर्वमान्य दर्शन है। इसके बाद भी चट्टोपाध्याय ने बलपूर्वक कहा है कि 'मूल सांख्य कट्टर नास्तिकवाद और भौतिकवाद था। तथ्य यह है कि वास्तव में प्राचीन भारतीय दर्शन परंपरा इसे ऐसे ही मानती थी। इसे बार-बार अनीश्वर प्रधान कारणवाद कहा जाता था। इसके अलावा यह प्रारंभ में उस शास्त्र सम्मत या वैदिक परंपरा का विरोधी रहा होगा जो आगे चलकर उपनिषदों का भाववादी सिद्धांत बन गया' (लोका. पृ. 286)। अनुमान और कल्पना का भी कोई आधार होता है, लेकिन हठ तो हठ है, कोई तर्क नहीं। चट्टोपाध्याय हठ पर उतर आए। उनके हठ का प्रयोजन यह है कि विकासवादी इतिहास दृष्टि को लागू किया जा सके। आर्य आक्रमण, सिंधु दमन की गोरी थ्यूरी से आर्य दमनकारी और अनार्य दमित को वर्गसंघर्ष के मुकाम तक पहुँचाया जा सके। इसके लिए कौटिल्य की आन्वीक्षकी से लोकायत को बलपूर्वक खींचकर अलग करना जरूरी है। यह असहज कार्य खास मकसद के लिए किया गया है।

निजी धारणा के लोकायत को हासिल करने के लिए चट्टोपाध्याय ने अपने लेखन में त्याग, तप, अहिंसा, शील, निर्वाण आदि के पक्षधर बौद्ध और जैन स्रोतों के उपयोग से कौटिल्य को बदनाम और बेदखल करवाया है, उन्होंने महापरिनिब्बान सुत्त से लिच्छवियों की पराजय का प्रसंग उठाया 'सीधा युद्ध नहीं किया गया, इसके बजाय कौटिल्य द्वारा बताई गई धूर्तता के तरीके अपनाए गए' (लोक. पृ. 138), इसी तरह जैन स्रोतों का सहारा भी लिया है। सर्वज्ञात है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र के लक्ष्य और बौद्ध-जैन मतों के उद्देश्य अलग-अलग हैं।

मार्क्समार्गियों ने समाज में घृणा के बीज इतनी गहराई में जाकर बो दिए हैं कि जिससे भारत का जनमानस स्वयं के इतिहास से घृणा करने लगे और आधुनिक युग के सामने आत्मनिंदा करते हुए घुटने टेक दें। इस तरह के मार्क्सवादी लेखन का दुष्प्रभाव ही है कि जनमानस में राष्ट्रभाव की भारी क्षति हुई और पश्चिमोन्मुखता बढ़ी, नए सिरे से गुलामी और गाढ़ी हुई।

कौटिल्य पार्थिव सुख के लिए राज्य निर्माण और राज्य विस्तार की नीतियों पर विचार करते हैं और मोक्ष के लिए चिंतित बौद्ध-जैन अहिंसा के परमधर्म में प्रवृत्त होते हैं, दोनों दो राह के राही हैं, फिर तो इनके बीच तुलना करने का कोई औचित्य ही नहीं है। मार्क्सवाद स्वयं वर्ग संघर्ष और खूनी क्रांति से परहेज नहीं करता, इसके लिए चट्टोपाध्याय ने भी अपनी लोकायती चौखट में पूरी कुटिलता से वैचारिक भूमि तैयार की है, वे अगर अहिंसा की दुहाई देते हैं तो इसे साधु कौन कहेगा?

वैदिक बनाम जैन-बौद्ध विभेद रचना के बाद वे जनजातीय और गैरजनजातीय लोगों के बीच चीरा लगाते पाए जाते हैं, ताकि वर्णों में विद्रोह की आग जलती रहे, उनका कहना है कि 'कौटिल्य के लेखन में जनजातीय लोगों के प्रति घृणा का उग्रतम रूप देखने को मिलता है', कौटिल्य कभी भी राजनीति को नैतिक आचरण के साथ नहीं जोड़ना चाहते थे' (लोका. पृ.134)। सभी जानते हैं कि जनजातीय शब्द और समाज की वह तस्वीर जो आज औद्योगिक क्रांति के बाद आधुनिक युग में दिख रही है और जिसमें वर्ग संघर्ष के बीज बोकर आंदोलनों की खेती हो रही है, कौटिल्य के काल (ई.पू. 321) में थी ही नहीं। हजारों साल पीछे के इतिहास में जाने का मतलब यही हो सकता है कि आज के समाज में घृणा का बीज इतनी गहराई में जाकर बो दिया जाए कि भारत का जनमानस स्वयं के इतिहास से घृणा करने लगे और आधुनिक युग के सामने आत्मनिंदा करते हुए घुटने टेक दे। इस तरह के मार्क्सवादी लेखन का दुष्प्रभाव ही है कि जनमानस में राष्ट्रभाव की भारी क्षति हुई और पश्चिमोन्मुखता बढ़ी, नए सिरे से गुलामी और गाढ़ी हुई।

अनौपनिवेशन की अपेक्षा से भारत के पारंपरिक अभ्युदय के मार्ग को जानना बहुत जरूरी है। यह ज्ञात रहे कि कौटिल्यकालीन भारत में सामान्य जनजीवन ही राष्ट्र का मूलाधार था, वही विकास और सुरक्षा का प्रमुख संसाधन था, इसलिए अधिक से अधिक जनपदों को बसाया जा रहा था, उनकी जनसंख्या बढ़ाई जा रही थी। तब कृषि की प्रमुखता थी। ऊसर भूमि को खेती के योग्य बनानेवाले किसान को उस भूमि पर पूरा अधिकार दिया जा रहा था, उन्हें हर तरह की सुविधाएँ दी जाती थीं। राज्य की ओर से किसानों के स्वास्थ्य का भरपूर ध्यान रखा जाता था। उन दिनों संपत्ति का केंद्र रत्नगर्भा पृथ्वी को ही माना जाता था। पृथ्वी के विनाश से नहीं, पालन से अभ्युदय की प्राप्ति का सिद्धांत प्रचलित था (कौ. 17.1)।

आदिवासी मोर्चे के बाद चट्टोपाध्याय ने नर-नारी विभेद के मोर्चे को भी सशक्त बनाया है, लिखा है कि 'चूँकि कृषि की खोज स्त्रियों ने की थी और प्रारंभ में केवल स्त्रियाँ ही कृषि कार्य करती थीं, इसलिए समाज में उनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति को सर्वोच्च बनाने के लिए अनुकूल स्थिति उत्पन्न हो गई। इसके विपरीत वैदिक विचारधारा पुरुष प्रधान थी, इसका भौतिक आधार उन वैदिक जनों के पशुपालन अथवा चरागाही की अर्थव्यवस्था थी' (लोका.पृ. 183)। चट्टोपाध्याय के अनुसार वैदिक कृषि और पशुपालन की दो अर्थव्यवस्थाएँ थी, यह बताने का खास मकसद यही हो सकता है कि स्त्री और पुरुष की दो अर्थव्यवस्थाएँ आपस

में कैसे टकराईं और पुरुषों ने स्त्रियों को कैसे दबाया तथा पुरुष प्रधान समाज बनाया। सर्वविदित है कि कृषि और पशुपालन दोनों एक-दूसरे के पूरक कार्य हैं। फि र भी प्रकृति-पुरुष को एक साथ रखने वाले सांख्य दर्शन के नवोन्मेषी अध्येता चट्टोपाध्याय को प्रकृति बनाम पुरुष की मोर्चाबंदी में कोई संकोच नहीं हुआ।

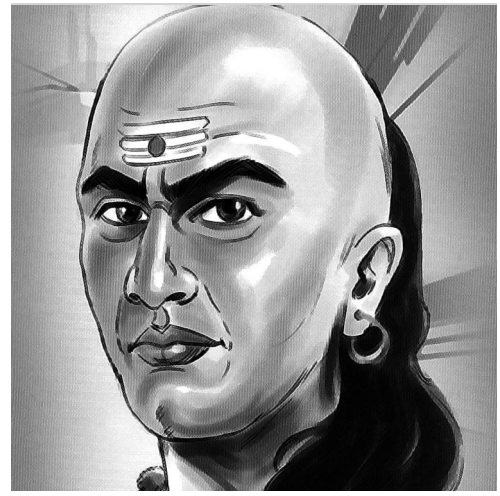

उनके सांख्य और लोकायत का बोध खास मकसद के लिए कुछ और है। यहाँ बताना जरूरी है कि कौटिल्य युगीन भारत में स्त्री की आर्थिक दशा क्या थी? कौटिल्य के अर्थशास्त्र के स्त्रीधनकृप (3.58.2) के अनुसार आवध्य धन अर्थात् गहनों के अतिरिक्त प्रत्येक विवाहिता स्त्री को दो सहस्र पण, मतलब दो हजार सोने के सिक्के वृत्ति धन के रूप में मिलना अनिवार्य था। यह धन स्त्री के निजी आर्थिक स्वालंबन के लिए था। विस्तार से इस विषय के विवरण में जाने के बदले यहाँ कहना आवश्यक है कि एक तरफ साम्राज्यवादी आधुनिक शिक्षा ने वास्तविक तथ्यों से समाज को अनजान बनाया, दूसरी तरफ इस अवसर का लाभ लेकर मार्क्समार्गियों ने गलत तथ्यों और तर्कों के आधार पर आदिवासी, स्त्री, दलित आदि विमर्शों के अखाड़े खोल हजारों वर्षों के दमन की ऐसी मनगढ़ंत कहानी सुनानी शुरू की, जिससे पारिवारिक, सामाजिक विघटन हो सके और वर्ग संघर्ष अथवा धर्मांतरण से जनाधर में बदलाव आए, सत्ता हाथ लगे और भारत हमेशा गुलाम बना रहे। इनके द्वंद्ववादी आधुनिक वैज्ञानिक विचार की विचित्रता देखिए कि वह प्रकृति विरोधी आधुनिक विज्ञान और भौतिक विकास दोनों का एक साथ पक्षधर है, फिर भी वैदिक अभ्युदय के सिद्धांत और प्रकृति संगी पंचतत्त्व विज्ञान पर आधारित सांख्य और लोकायत पर दावा करता है।

लोकायत को कामाचार केंद्रित दर्शन मानकर चट्टोपाध्याय ने वाममार्गी तांत्रिकों की पंचमकारी साधना तक पहुँचाया, इससे आगे आदिम सभ्यताओं में प्रचलित कामाचार के साथ जोड़ा, मोर्गन के नृ-तात्त्विक खोजों का आधार लिया, मार्क्स के विकासवादी इतिहास विश्लेषण के रास्ते चलते हुए बर्बर युग से सभ्य युग तक के ऐतिहासिक विकास का भारतीय संस्करण तैयार कर दिया, बिना सोचे कि इस तरह के घालमेल से लोकायत को जंगल युग में पहुँचाकर बर्बर असभ्य जातियों का दर्शन बताना उचित है या अनुचित ? यदि यही करना है तो सांख्य को मार्क्सवादी विमर्श में लोकायत के साथ घसीटने की जरूरत क्या है? और यदि नास्तिक दर्शन भी बर्बर युगीन है, तब उसे जैन-बौद्ध के साथ जोड़ने का क्या मतलब ? क्या अहिंसा परमधर्म और करुणा-निर्वाण रास्ते चलनेवाले जैनों-बौद्धों की नास्तिकता किसी भी दशा में बर्बर मानी जा सकती है? इसी जमीन पर आज सनातन धर्म के खिलाफ शिक्षा से लेकर साहित्य, संस्कृति, समाज, राजनीति और मीडिया तक सर्वत्र वर्ग संघर्ष के समीकरणों की रण-भेरियाँ बज रही हैं। इसकी एक और बानगी जनसंस्कृति मंच के मसविदा दस्तावेज, द्वितीय राष्ट्रीय सम्मेलन में पाई जाती है। इसमें भी भारत के सांस्कृतिक इतिहास के भीतर वर्ग संघर्ष का पुरावशेष खोजा गया है 'सुदूर अतीत में वर्ण और वर्ग के विभाजन पर आधारित

शोषण के सनातन धर्म-संस्कृति के खिलाफ लोकपरक तथा वस्तुवादी चिंतन और कला की मजबूत परंपरा विकसित हुई थी। 'लोकायत और बौद्धमत ने मानव जीवन और बुद्धि की तरफ से तमाम परजीवी और बुद्धि-विरोधी संस्कृति को प्रबल चुनौती दी थी। अर्थात् प्राचीन भारत में आस्तिक दर्शन की वैदिक परंपरा के खिलाफ नास्तिक लोकायत और बौद्धमत की लहरें उठीं और ये जनवादी सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में मध्ययुग तक आई, मध्ययुग में उत्पीड़ित तबकों से आए विद्रोही संत कवियों ने सामंती व्यवस्था पर तीखा प्रहार किया और प्रेम तथा समता पर आधरित समाज के निर्माण का संदेश दिया। सांप्रदायिक संकीर्णता के खिलाफ सभी धर्मावलंबियों की मूल एकता का स्वर प्रबल हुआ। सूफीमत और भक्ति आंदोलन ने लोकभाषाओं और उनके साहित्य के विकास का मार्ग प्रशस्त किया।' इसके आगे यही लहरें 'औपनिवेशिक दासता और सामंती जड़ता के खिलाफ राष्ट्रीय आंदोलन और जनवाद के लिए' टकराती पाई जाती हैं। इसके बाद इनके निशाने पर 'ब्राह्मणवाद, पुनरुत्थानवाद, नारी उत्पीड़न, धार्मिक अंधविश्वास, कर्मकांड, संप्रदायवाद, भाग्यवाद, अवतारवाद, पुनर्जन्म, बाबावाद इत्यादि होते हैं। इन्हीं मतों की प्रेरणा से 'वैज्ञानिक चेतना के प्रति झुकाव, सृजन के क्षेत्र में विस्तार, समता और स्वाधीनता के लिए संघर्ष तथा राष्ट्रीय नवजागरण की प्रवृत्ति' (पृ. 2, 3) को बल मिलता है। इस हमले के सीधे निशाने पर वैदिक सनातन धर्म-संस्कृति, आस्तिक दर्शन, पुराण और जनजीवन में व्याप्त आस्था है, हमलावर विचार की नजर में यह परंपरा, इस परंपरा को ढोने वाले, वर्ण-वर्ग के विभाजन से शोषण का तंत्र बनाने वाले परजीवी और बुद्धि विरोधी लोग ही हैं। इसलिए वैदिक सनातन-धर्म और आस्तिक दर्शन के वास्तविक तथ्यों को सामने लाकर इन मिथ्या आरोपों की घेराबंदी तोड़ना आवश्यक है, इनसे जनमानस को मुक्ति दिलाए बिना राष्ट्र एकात्मता की कल्पना तक नहीं की जा सकती है। विचित्रता यह कि जो हमलावर विचार खुद वर्गभेद के समीकरणों से द्वंद्व-विमर्शी रणनीतियाँ बनाता हो, उसे त्रिगुणातीत पवित्रात्मा कहलाने की लालसा भी है। मगर उसकी दूषित इतिहास दृष्टि और वर्गभेद में आर्य आक्रमण और फूट डालो-राज करो की कितनी प्रतिशत अकल साम्राज्यवादी अंग्रेजों से उधार ली गई है, हिसाब कीजिए तो ज्ञात होगा कि इनमें भी अंग्रेज की तरह नए साम्राज्यवाद के कम विषाणु नहीं हैं।

वैदिक सनातन-धर्म और आस्तिक दर्शन के वास्तविक तथ्यों को सामने लाकर इन मिथ्या आरोपों की घेराबंदी तोड़ना आवश्यक है, इनसे जनमानस को मुक्ति दिलाए बिना राष्ट्र एकात्मता की कल्पना तक नहीं की जा सकती है।

बुद्धि विरोधी संस्कृति के खिलाफ लोकायत और बौद्धमत को एक साथ लामबंद करते हुए मार्क्समार्गियों ने शायद यह नहीं सोचा-समझा होगा कि लोकायत और बौद्धमत के बीच प्रत्यक्ष जगत् की धारणा में ही ऐसी गहरी खाई है, जिसे पाटना संभव नहीं। लोकायत जिस प्रत्यक्ष जगत को सर्वस्व मानता है, उसे बौद्ध सिद्धांतों में वास्तविक सत्ता ही नहीं माना जाता। माध्यमिक बौद्ध संप्रदाय कहता है कि बाह्य दृश्य जगत् और इंद्रियाँ तत्त्वतः हैं ही नहीं, केवल अद्वैत शून्य है। महायानी का मानना है कि विषय के साथ इंद्रिय के संबंध और प्रत्यक्ष पर चर्चा ही व्यर्थ है। योगाचार संप्रदाय क्षणिक विज्ञान मात्र को ही मानता है, वस्तु जगत् को नहीं। बाह्य अस्तित्ववादी हीनयानी बौद्धमत में वस्तुओं को अनुमेय

ही माना जाता है। इस संप्रदाय का कहना है कि बाह्य वस्तुएँ हैं, क्योंकि उनका प्रभाव पड़ता है, लेकिन उन्हें इंद्रियों से प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय बनाया ही नहीं जा सकता। जब शील और निर्वाण में निष्ठा रखनेवाले बौद्धमतों को प्रत्यक्ष जगत् स्वीकार ही नहीं है तो वे प्रत्यक्ष जगत् को ही सर्वस्व मानने वाले लोकायत के साथ कैसे खड़े होंगे? वस्तुतः सर्वदर्शन संग्रह में सायणमाधव ने चार्वाक अर्थात् लोकायत दर्शन को जिस प्रकार प्रस्थान बिंदु बनाया, बौद्ध दर्शन ने भी इस दर्शन को पूर्वपक्ष ही बनाया है। वेदांत दर्शन ने भी इसे खंडन के प्रतिपक्ष ही रखा है। सर्वदर्शन संग्रह में इसकी तुलना बौद्ध दर्शन से करके यह बताया गया है कि ये दोनों अनात्मवादी तो हैं लेकिन लोकायत उच्छेदवादी दर्शन है, वह पुनर्जन्म नहीं मानता, परलोक नहीं मानता, मरणोपरांत कर्म-कुकर्म के फल भी नहीं मानता, एक ही जन्म को अंतिम मानता है। योगाचार भूमि (पृ.152) में असंग ने 'तस्यमातापित्रनियमं दृष्ट्वा भवति, नास्ति माता नास्ति पिता' कहते हुए बौद्ध दर्शन की दृष्टि से लोकायत की समीक्षा की है पर, 'अंगनाद्यालिंगनादिजन्य सुखमेव पुरुषार्थः' के ऐहिक सुखवाद का समर्थन नहीं किया है। वेदांत इस दर्शन को 'प्राकृता जना लोकायतिकाश्च प्रतिपन्नाः' कह कर आलोचना करता है। इसे आरंभिक दर्शन माना जाता है क्योंकि यह सामान्य रूप से लोक में व्याप्त है। बौद्ध दर्शन उच्छेदवाद और शाश्वतवाद दोनों को नहीं मानता। बौद्ध साहित्य में पुनर्जन्म की चर्चा है। लोकायत को बौद्ध दर्शन के साथ मिलाना उचित नहीं। मार्क्समार्गियों के मिलावटी कारोबार से लोकायत और बौद्धमत दोनों की सेहत खराब हुई है। बौद्धमत और लोकायत की संगति का अर्थ है– बुद्ध और मार्क्स की विरोधाभासी जोड़ी बनाकर निर्वाण को बाधित कर देना।

तथाकथित बुद्धिमान संस्कृति यदि चाहती है कि लोकायत के साथ किसी ऐसे विचार को रखे, जो देह-सुख को अधिक महत्त्व देता हो तो वह विष्णु शर्मा के शरण में जा सकती है, पूरी दुनिया को अकल सिखलाने वाले पंचतंत्र के रचयिता विष्णु शर्मा लोकायती सुख से समाज को वंचित रखना नहीं चाहते, कहते हैं कि 'परलोक में क्या होगा, इसमें संदेह है। इस लोक में अनेक प्रकार के झूठ, सच और विचित्र निंदा होती रहती है, फिर भी यहाँ किसी दूसरे के साथ रमण करने की स्वाधीनता है। वह धन्य है जो युवावस्था का यह फल प्राप्त कर लेता है'– संदिग्धे परलोके जनापवादे च जगति बहुचित्रे (मित्र.191)। यही तो चार्वाक दर्शन का देहाधारी भौतिक विचार है। लेकिन नहीं, इसमें समस्या आ सकती है। विष्णु शर्मा के पंचतंत्र और कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अभेद संबंध है। पंचतंत्र अर्थशास्त्र का प्राचीनतम विश्व बाल साहित्य है और कौटिल्य का अर्थशास्त्र वैश्विक ज्ञान को प्रभावित करनेवाला संस्थानिक अर्थशास्त्र। ये दोनों वैदिक ज्ञान के संवाहक हैं, श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास की ज्ञान धाराएँ इनकी शिराओं में दौड़ती हैं। इसके स्थापित पुरुषार्थों में अर्थ और काम के साथ धर्म भी है। यह धर्म ईश्वरीय मतवादों के अधीन नहीं है।

जिस प्रकार गीता का निष्काम कर्मयोग युद्ध और विजय

मार्क्समार्गियों के मिलावटी कारोबार से लोकायत और बौद्धमत दोनों की सेहत खराब हुई है। बौद्धमत और लोकायत की संगति का अर्थ है– बुद्ध और मार्क्स की विरोधाभासी जोड़ी बनाकर निर्वाण को बाधित कर देना।

के लिए प्रेरित करता है, कौटिल्य का अर्थशास्त्र भी विजिगीषु राजर्षियों का मार्ग दर्शन करता है। गीता में सांख्य से त्रिगुणात्मक जगत् की समझ, वेदत्रयी से यज्ञमय कर्म का ज्ञान और योग से जीवन की पूर्णता का संदेश है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में प्रकृति-पुरुष दोनों को उभय रूप से प्रतिष्ठा देनेवाले सांख्य के साथ योग और लोकायत है। धर्म, अर्थ और काम के लोकायतिक सुख की प्राप्ति सांख्य और योग के साथ त्रयी, वार्त्ता, दंडनीति से होती है। इस त्रिवर्ग में लोक का उपकार है, सुख-दुख में बुद्धि को स्थिर रखने की युक्ति है। सांख्य और योग परस्पर विरोधी नहीं, सहयोगी हैं, सांख्य ज्ञान का और योग कर्म का आधार है, अर्थशास्त्र के संदर्भ में सांख्य और योग दोनों के भौतिक प्रतिफल अर्थात् लोकायत के बिना पार्थिव सुख की कल्पना नहीं की जा सकती है। गीता और कौटिलीय अर्थशास्त्र दोनों से ही राष्ट्र का दायित्व मुखर होता है।

चार्वाक केवल प्रत्यक्ष को ही मानता है, उसका नास्तिक दर्शन लोकायत भौतिक कामनाओं तक सीमित देहधर्मी है, यह वैदिक कर्मकांड की घोर भर्त्सना करता है, इस भर्त्सना से यज्ञ की आवश्यकता समाप्त नहीं हो जाती। जैसे यज्ञ से वृष्टि का आयोजन है। क्या पर्जन्य के बिना वर्षा, वर्षा के बिना अन्न और अन्न के बिना जीवन संभव है? नहीं। लोकायतिक विचार की पूर्ति में वैदिक कर्मकांड सहयोगी हैं, दुर्योगी नहीं, लेकिन जहाँ अतिशयता और एकांगिकता है, उन पक्षों को संयमित किए बिना आत्मिक विकास संभव नहीं। अन्य कई भौतिक प्रयोजन हैं, जिनके लिए यज्ञादि वैदिक आचार आवश्यक हैं, उनका कोई विकल्प नहीं है। साथ ही प्राथमिक दर्शन होने के कारण चार्वाक के अर्थ और काम को समूल नकारना संभव नहीं है। यहाँ मत भिन्नता दिखती है, परंतु ऐसी मत भिन्नता नहीं, जिसमें अंतर्संबंध न हो। वेद ने सृजनशील काम को श्रेष्ठतम स्थान दिया है, उसे 'देवों, पितरों और मनुष्यों से भी पूर्व के प्रथम यज्ञ' कहा है– 'कामो जज्ञे प्रथमो नैनं देवाः आपुः न पितरो न मर्त्याः' (अथर्व. 9.2.19)।

तथाकथित बुद्धिमान संस्कृति यदि चाहती है कि लोकायत के साथ किसी ऐसे विचार को रखे जो देह-सुख को अधिक महत्त्व देता हो तो वह विष्णु शर्मा के शरण में जा सकती है

आस्तिक और नास्तिक में, लोक और शास्त्र में द्वंद्व आरोपित करके वर्ग संघर्ष का बिगुल फूँकने वाले लोग जानें तो सही कि वे किस तरह का प्रज्ञापराध करते हैं और समाज मानस में विद्वेष का विष फैलाते हैं। सामवेदीय उपनिषद् छान्दोग्य के आरुणि और श्वेतकेतु के प्रसंग (6.6-7) में त्रयी, सांख्य और लोकायत के स्रोत एवं संख्या क्रम विद्यमान हैं। अन्नमय मन, जलमय प्राण और तेजोमय वाग् में त्रयी निहित है- तेज में संपूर्ण प्रजा का सदायतन है, तीन ही देवता त्रिवृत्त-त्रिवृत्त होकर विस्तृत हो जाते हैं- 'सर्वाः प्रजाः सदायतनाः' ...'त्रयो देवता पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तदुक्तं पुरः।' जैसे प्राणमय तेज का सदायतन है, अन्नमय मन का भी आयतन है- 'मनो ह वा आयतनम्' (छान्दोग्य. 5.1.5) और जलमय प्राण का भी। प्रकृति के प्रत्येक स्तर में आयतन है। इसलिए लोक के आयतन को लोकायत कहा गया। यह चेतन और अचेतन दो त्रिकोणों से निर्मित एक वर्गीय संरचना है। सांख्य वेद प्रसूत पंचतत्त्व विज्ञान है, इस विज्ञान पर नास्तिक- आस्तिक सभी दर्शन आधारित हैं, चार्वाक दर्शन भी, लेकिन चार्वाक पंचतत्त्वों में से चार तत्त्वों- भूमि, जल, अग्नि और वायु को मानता है, मात्र आकाश को नहीं। पंचतत्त्व विज्ञान पर केवल दर्शन ही नहीं, अन्य भौतिक ज्ञान भी आधारित है, यहाँ तक कि मानुषी चिंतन प्रणाली भी। सांख्य प्रतिपादित करता है कि

'त्रिगुणात्मिक प्रकृति में समुत्पन्न बुद्धि भी त्रिगुणात्मिका है' (सांख्यकारिका), गीता कहती है- देहधरियों का स्वभाव बनानेवाली श्रद्धा भी त्रिविध होती है-'त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा' (17.2), प्रकृति त्रिगुणी है तो बुद्धि भी त्रिगुणी है, श्रद्धा त्रिविध है तो मनुष्य का स्वभाव भी त्रिधा है। ज्ञान-लाभ के लिए त्रिधा श्रद्धा आवश्यक है। इसीलिए मानुषी चिंतन प्रणाली भी त्रिविध होती है, यह सांख्य की सीमा के बाहर कैसे जा सकती है, चाहे वह चिंतन आद्य से अद्यतन तक भौतिक हो या अभौतिक, कोई भी इसके संख्या क्रम का अतिक्रमण नहीं करता।

ज्ञान, कर्म और कर्ता इन तीनों के संख्या क्रम में गुण भेद बताने के कारण इस चिंतन प्रणाली का नाम सांख्य पड़ा- 'ज्ञानं कर्म च कर्ता त्रिधैव गुणभेदतः' (गीता 18.19)। तीन गुणों में व्यक्त एक अव्यय साम्य की सत्ता प्रकृति कही गई-'सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः' (सांख्यसूत्र- 1.61)। त्रिवृत्त ब्रह्म की यज्ञमयी प्रकृति ही त्रयी है। वह स्वयं भोक्ता है, भोग्य है और प्रेरक भी- 'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्मैतत्' (श्वेत.)। भोक्ता, भोग्य और प्रेरक की यही त्रिकीय चिंतन प्रणाली विषय भेद से विविध शब्दावलियों में सर्वत्र दिखाई देती है– कहीं त्रिगुण, कहीं त्रसरेणु, कहीं त्रिक्षणवृत्त तो कहीं ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय की त्रिपुटी है, इनकी संख्या और क्रिया में कोई परिवर्तन नहीं होता, क्योंकि आंतरिक और बाह्य दिक्काल की गति में भी यही संख्या क्रम निहित है। वेद त्रयी से प्रसूत यह त्रिविध ब्रह्म चिंतन की प्रणाली उपनिषद्, नाट्य, शिल्प, चिकित्सा, दर्शन इत्यादि शास्त्रों को प्राप्त हुआ है। यही 'गुण संख्याने' रेखा और अंक के गणित को भी साधार बनाता है। त्रिक-तृष्णा जगतेच्छा है, इसमें क्रिया और प्रतिक्रिया दोनों है, यह जाग्रत् होती है तो आधार चाहती है, आहार चाहती है, अव्यय का आधार न मिले तो स्वयं को ही खा जाती है।

आज भी विश्व भर का चिंतन भारत के त्रिविध ब्रह्म चिंतन अर्थात् त्रिकीय चिंतन प्रणाली से मुक्त नहीं हो पाया है। मार्क्सवाद भी त्रिकीय चिंतन प्रणाली के बाहर नहीं जा सकता। इस के विस्तार का सर्वाधिक श्रेय जिस एक दर्शन को दिया जा सकता है वह दर्शन सांख्य है। प्रश्न उठ सकता है कि आधुनिक और उत्तराधुनिक पश्चिमी विचारकों की तरह वर्तमान भारत में मोक्षमार्गी ब्रह्म चिंतन से मुक्त जागतिक धरातल पर त्रिविध ब्रह्म चिंतन प्रणाली द्वारा विश्व का दिग्दर्शन करनेवाले विचारक क्यों नहीं हैं? और क्यों मार्क्स के लिए जमीन तैयार करने में भारतीय विचार-श्रमिक जी तोड़ मेहनत करने लगा; वेद, ब्राह्मण और सनातन धर्म की धज्जियाँ उड़ाने लगा? इसके उत्तर के लिए भारत के संदर्भ में राजनीतिक पराधीनता और आर्थिक लूट की कहानी सुनाई जा सकती है। विश्वभर के संदर्भ में इतिहास प्रवर्तक प्रमुख कारकों को गिनाया जा सकता है जिससे आधुनिक युग की सभ्यता का उदय हुआ, जिसमें प्रकृति संगी सभ्यताएँ क्षय होने लगीं, उन्हें पेगन सभ्यता की उपाधि दे पिछड़ा बताया जाने लगा। औद्योगिक क्रांति के बाद के विश्व में जिनके पास यांत्रिक विकास का प्रश्रय था, वे मशीन लेकर आगे बढ़े, जिनके पास ईंधन था, वे ईंधन बेचकर आगे बढ़े। लुटे-पीटे भारत के पास उन्नीसवीं सदी में क्या था, बस अपना अध्यात्म ही था, भारत ने अध्यात्म का शंखनाद किया, आधुनिक युग के गहन अंधकार में उसके लिए भी आत्मगौरव का एक रोशनदान खुला, इससे आरंभिक परिचय साधु की तरह ही बन पाया, भारतीय युवा मन को यह बाना ऐहिक सुख से वंचित लगा, उन्हें साम्राज्यवाद के विरुद्ध मार्क्सवाद की आवाज ने आकर्षित किया, सफलता की ओर बढ़ते मार्क्सवाद के शोषक, शोषित और पूँजी के वर्गीय विचारों ने प्रभावित किया। इस पीढ़ी को सोवियत रूस का प्रश्रय मिला, जिससे आर्थिक मोर्चे पर आरंभ हुए 1905 के स्वदेशी आंदोलन की विचाराग्नि बुझ-सी गई। इन्हीं दिनों

पं. शामशास्त्री ने कौटिल्य के अर्थशास्त्र को प्रकाश में लाया था। जिस तरह एडम स्मिथ के 'वेल्थ ऑफ नेशन' का आधार लेकर पश्चिम का आधुनिक अर्थ चिंतन आगे बढ़ा, हम भी भारतीय परिप्रेक्ष्य में कौटिल्य के साथ खड़े होते तो एडम स्मिथ का हिसाब जरूर लगा पाते। 1757 के प्लासी युद्ध की जीत के पहले 'वेल्थ ऑफ नेशन' का पूँजी बोध कहाँ था, जब भारत की अकूत संपत्ति लूटकर इंग्लैंड गई, एडम स्मिथ का पूँजी बोध उदित हुआ, औद्योगिक क्रांति हुई और आधुनिक युग की सभ्यता उभार लेने लगी। पश्चिमी इतिहास के भीतर 1818 में जन्मे कार्ल मार्क्स ने एडम स्मिथ के पूँजी बोध का विपरीत बल लेकर अपने पूँजी बोध को स्थापित किया और इधर भारत में पतन का दूसरा दौर चलता रहा- मांस उतर गए, नसें सूख गईं, हड्डियाँ निकल आईं, सच बताने के बदले यह बताया जाने लगा कि यह सब वर्ण व्यवस्था का रोग है, मोटेराम शास्त्री ने धर्म की आड़ में बैठ सेठ और सामंत को साथ लेकर समाज का सारा खून पी लिया। मोटेराम के सिर पर सारा ठीकरा फोड़कर मुगल कालीन जागीरदार और ब्रितानी हुकूमत के जमीदार पाप मुक्त होने लगे, वेद विरोधी जनों की बाँछे भी खिल गई। वस्तुतः इस तरह के जुमले आधुनिक शिक्षा और व्यवहार के लिए सुविधा देते हैं, पारंपरिक लज्जा से पिंड छुड़ाने में मदद देते हैं, पूर्व कृत पाप से मुक्ति का अनुभव और पश्चिमी गुरुओं का शिष्यत्व एक ही साथ प्रदान करते हैं, जिन्हें यह सब पसंद है, वे लोग परेशानी में क्यों पड़ेंगे?

1757 के प्लासी युद्ध की जीत के पहले 'वेल्थ ऑफ नेशन' का पूँजीबोध कहाँ था, जब भारत की अकूत संपत्ति लूटकर इंग्लैंड गई, एडम स्मिथ का पूँजीबोध उदित हुआ, औद्योगिक क्रांति हुई और आधुनिक युग की सभ्यता उभार लेने लगी।

यह वास्तविकता है कि वैदिक लोकायत, चार्वाकी लोकायत, कौटिलीय लोकायत और अवैदिक बौद्धादि के लोकायत सांख्य दर्शन पर ही आधारित हैं। ये सभी पंचतत्त्व विज्ञान से पोषित हैं, ये ब्रह्मा के चतुर्युग में गतिशील हैं, लेकिन मार्क्सवादी लोकायत का मामला ही संदिग्ध है। यदि यह लोकायत भौतिक द्वंद्वात्मकता पर आधारित है, आधुनिक विज्ञान से पोषित है, डारविन के विकासवाद से अपनी इतिहास दृष्टि बनाकर पूँजी के साथ आगे बढ़ता है और वेद विरोधी मतों का सहारा लेकर वर्गसंघर्ष के समीकरण बनाता है तो ध्यान रहे कि इसे हमारी विचार परंपरा में कहीं स्वीकृति नहीं मिलती, क्योंकि जो दर्शन वेद विरोधी हैं, वे भी आध्यात्मिक और अहिंसक है, शील और निर्वाण का व्रती है और सांख्य के साथ है। वे डारविन के विकासवाद को नहीं, पुनर्जन्म और कर्मवाद को मानते हैं। कोई मार्क्सवादी पंचमकारी तांत्रिक मार्ग से लोकायत पर दावा करे अथवा बौद्धमत से, सफलता संभव नहीं, क्योंकि कौटिल्य ने लोकायत को अपनी आन्वीक्षकी का अभिन्न अंग बना रखा है। यदि कोई यह कहता है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में चतुर्वर्ण होने के कारण उसका लोकायत स्वीकार्य नहीं, तो यह सोच भ्रामक है, क्योंकि चतुर्वर्णी व्यवस्था वैयष्टिक, सामष्टिक और पारमेष्टिक तीनों स्तरों पर है, पारंपरिक समाज व्यवस्था नहीं मानने वाले लोग भी निजी देहांगों में और कार्य समूह में चतुर्वर्ण का व्यवहार करते हैं। कौटिल्य सिद्धांत है, उसके लोकायतिक भौतिकवाद का समय सापेक्ष प्रयोग संभव है, क्योंकि अभी अर्थ और काम दो ही पुरुषार्थ प्रबल हैं। इसमें किसी मार्क्सवादी भौतिकवाद का हस्तक्षेप अनावश्यक है। ■

(लेखक एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली के भाषा विभाग में प्राध्यापक हैं।)

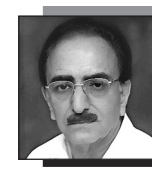

ओमीश परुथी

मीरा के काव्य पर संत मत का प्रभाव

मीरा जिस युग में काव्य–सृजन कर रही थी, वह संत मत के वैभव का काल था। कबीर व रैदास सरीखे प्रतिनिधि संत कवि अपनी वाणी के माध्यम से जनमानस में प्रतिष्ठित हो चुके थे। अतः लोकलाज को त्याग कर 'संतों के ढिक' बैठने वाली मीरा का उनके मत से प्रभावित होना सहज व स्वाभाविक था।

मीरा के काव्य में एक अद्भुत सामंजस्य दृष्टिगोचर होता है। एक ओर यह काव्य सगुण-साकार उपास्य गिरधर के प्रति मीरा के अनन्य प्रेम से आप्लावित है, चिरविरहिणी की वेदना से स्पंदित है; तो दूसरी ओर इसमें संत कवियों की शब्दावली में गुरु व नाम स्मरण की महिमा, संसार की क्षणभंगुरता, विषय-विकारों की व्यर्थता तथा बाह्याचारों की निस्सारता भी व्यक्त हुई है। 'मीरा-पदावली' के सम्यक् अध्ययन से ज्ञात होता है कि उसकी विषयवस्तु, भाव व अभिव्यंजना शैली संत काव्य से प्रभावित है।

मीरा जिस युग में काव्य-सृजन कर रही थी, वह संत मत के का वैभव काल था। कबीर व रैदास सरीखे प्रतिनिधि संत कवि तब तक अपनी वाणी

के माध्यम से जनमानस में प्रतिष्ठित हो चुके थे। अतः लोकलाज को त्यागकर 'संतों के ढिक' बैठने वाली मीरा का उनके मत से प्रभावित होना सहज व स्वाभाविक था–

साध संत हिरदै बसै,
हथलेवा को लाग्यो पाप [1]

• • •

मेरो मन लागो हरि सूँ,
अब न रहूँगी अटकी
गुरु मिल्या रैदास जी,
दीन्हीं ग्यान की गुटकी [2]

इन पंक्तियों में मीरा ने संत कवि रैदास को अपना गुरु बताया है। यद्यपि अब यह तथ्य विवादास्पद है, तथापि मीरा की संत कवि रैदास आदि के प्रति श्रद्धा व आस्था को अवश्य व्यक्त करता है, संतों के प्रति उनके लगाव का द्योतक है। हिंदी साहित्य के कई विद्वानों ने मीरा के काव्य पर इस प्रभाव को लक्षित किया है। 'हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास' के अंतर्गत डॉ. भोलानाथ तिवारी ने तो यहाँ तक लिखा है कि संत मत से प्रभावित कृष्णधारा के कवियों में मीरा का नाम सर्वोपरि हैं– ''मीरा पर संत मत और संत साहित्य का प्रभाव विचार, शब्द तथा प्रतीक विधान आदि सभी रूपों में दृष्टिगत होता है। उनमें प्रेम, सतगुरु के कारण विरह की उत्पत्ति, ज्ञान तथा आत्मा-परमात्मा की एकता आदि से संबद्ध सारे विचार संतों के हैं।''[3]

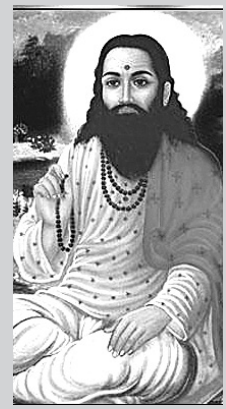

मीरा ने संत कवि रैदास को अपना गुरु बताया है। यद्यपि अब यह तथ्य विवादास्पद है, तथापि मीरा की संत कवि रैदास आदि के प्रति श्रद्धा व आस्था को अवश्य व्यक्त करता है।

मीरा पर संत मत के प्रभाव को रेखांकित करते हुए डॉ. बच्चन सिंह लिखते हैं– ''उनमें एक ओर निर्गुण पंथ का योग, अनहद नाद, शून्य महल, सुरत, त्रिकुटी है, तो दूसरी ओर सूरदास के विनय के पदों की तरह के पद भी हैं।''[4] मीरा के काव्य में संत कवियों की शब्दावली के प्रयोग को देखकर कतिपय समीक्षकों– डॉ. पीतांबर दत्त बड़थ्वाल तथा डॉ. पद्मावती शबनम ने मीरा की भक्ति को निर्गुणोपासना की परिधि में समेट लिया है। वे लिखती हैं– ''मीरा ने इसी पद्धति को अपनाया, उनकी सगुण भावना निर्गुणोपासना की प्रतीक मात्र थी।''[5] लेकिन यह मत उत्साहातिरेकजन्य अधिक, तथ्यपरक कम है। मीरा पर निःसंदेह संत कवियों का प्रभाव तो देखा जा सकता है, लेकिन मात्र इसीलिए उसे निर्गुणोपासक कहना उचित नहीं। सत्य तो यह है कि सगुण, साकार उपास्य की साधिका होते हुए भी मीरा के हृदय में संत मत के प्रति आस्था थी, जो सहज रूप से उसके काव्य में व्यक्त हुई है।

मीरा के काव्य पर संत मत के प्रभाव का आकलन करने से पूर्व इस मत की विचारधारा से अवगत होना उपादेय होगा। संत मत में आराध्य के रूप में निर्गुण, निराकार ब्रह्म मान्य है। मूर्तिपूजा व कर्मकांडीय प्रक्रिया में संत कवियों का विश्वास नहीं था, इसीलिए भक्ति के सहज, सरल रूप को अपनाते हुए उन्होंने बाह्याचारों का विरोध किया है। गुरु को उन्होंने अत्यधिक महत्त्व दिया है। कबीर ने तो गुरु को गोविंद से पहले माना है, जो प्रभु साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त करता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने इस जगत् को मिथ्या मानते हुए माया के सभी रूपों की भर्त्सना की है। साधक हेतु सदाचार को अनिवार्य माना है। अतः मानव को अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध व मोह से बचने के लिए सावधान किया है। ज्ञानमार्गी होते हुए भी संत कवियों ने अपनी साधना पद्धति में प्रेम को पर्याप्त महत्त्व दिया है।

संत मत के परिप्रेक्ष्य में मीरा-काव्य का अध्ययन करने पर उसमें कई ऐसे पद मिलते हैं, जिन पर इस मत का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। भले ही मीरा सगुणोपासिका थी, लेकिन

गुरु महिमा को उसने संत मत के अनुरूप ही अंकित किया है। सर्वप्रथम संत कवियों की भाँति गुरु को 'सतगुरु' कहकर संबोधित किया है। मीरा के लिए 'सतगुरु' वह 'खेवटिया' है, जो भवसागर से पार लगा देगा–

'सत की नाव खेवटिया सतगुरु, भवसागर तर आयो।'[6]

गुरु की ही कृपा से उसे रामनाम रूपी अमूल्य वस्तु प्राप्त हुई है, जिसने उसके जीवन को बदल दिया है–

'वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, किरपा करि अपनायो।'[7]

गुरु ने मीरा का ऐसा सच्चा मार्गदर्शन किया कि उसके मन के सारे संशय दूर हो गए। अब वह 'परम गुराँ के सरण' में ही बनी रहेगी। उन्हीं के उपदेशानुसार जीवनयापन करते हुए जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जाएगी।[8] कबीर ने गुरु के शब्दबाण से शिष्य के हृदय में प्रभु-प्रेम जाग्रत् होने की बात कही है।[9] मीरा ने भी गुरु के शब्दों का शिष्य पर विलक्षण प्रभाव दरशाते हुए लिखा है–

'जनम जनम का सोया मनुवाँ,
सतगुर सब्द सुण जागा।'[10]
माता-पिता, सुत, कुटुम-कबीला,
टूट गया ज्यों तागा।।

संत कवियों ने नाम स्मरण की महिमा बताई है। मीरा के काव्य में भी प्रभु नाम स्मरण पर बल दिया गया है। मीरा ने अपने कई पदों में नाम स्मरण का गुणगान किया है। इस संदर्भ में मीरा के साथ-साथ कबीर की पंक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं, जिससे इस प्रभाव को आँका जा सकता है–

राम रसाइन प्रेम रस पीवत, अधिक रसाल।[11]
-कबीर

राम नाम रस पीजै मनुआ,राम नाम रस पीजै।[12]
-मीरा

मेरा मन सुमिरै राम को, मेरा मन रामहि आहि।[13]
मेरो मन रामहिं राम रटै रे। -कबीर

राम नाम जप लीजे प्राणी, कोटिक पाप कटै रे।[14]
- मीरा

मीरा की दृष्टि में प्रभु नाम स्मरण अमृत से भरे कटोरों का पान है। प्रभु नाम में वह शक्ति है, जिससे प्राणी के जन्म-जन्म का पुराना लेखा-जोखा मिट जाता है।

मीरा की दृष्टि में प्रभु नाम स्मरण अमृत से भरे कटोरों का पान है। प्रभु नाम में वह शक्ति है, जिससे प्राणी के जन्म-जन्म का पुराना लेखा-जोखा मिट जाता है। संत कवि गुरुनानक ने रामनाम को भवसागर पार कराने वाला जहाज कहा है। मीरा ने भी अपने काव्य में ऐसे ही विचार व्यक्त करते हुए लिखा है–

राम नाम की जहाज चलास्याँ,
भवसागर तिर जास्याँ।[15]

संतों ने धर्म के कर्मकांडीय रूप को अस्वीकार करते हुए बाह्याचारों का खंडन किया है। मीरा मूर्तिपूजा व अर्चना तो

मीरा के काव्य में सपाटबयानी व विद्रोह की वैसी ही वृत्ति दिखाई देती है, जिसके लिए संत काव्य के प्रतिनिधि कवि कबीर जाने जाते हैं। यद्यपि मीरा मध्ययुगीन सामंती व आभिजात्य परिवेश में पोषित हुई थी, लेकिन यही परिवेश जब उसके प्रभु-प्रेम में बाधक बना तो उसने साहस व निर्भयतापूर्वक उसका विरोध किया। न तो कुल की मर्यादा को और न सामाजिक बंधनों को उसने अपनी साधना के मार्ग की बाधा बनने दिया।

करती थी, लेकिन अन्य बाह्याचारों को उसने भी व्यर्थ बताया है। उसने लिखा है कि केवल स्नान करने अथवा तिलक लगाने से मन पवित्र न होगा। मन में मैल के रहते हुए भक्ति सफल नहीं हो सकती।[16] तीर्थाटन करने अथवा काशी जाकर करवत लेने को भी व्यर्थ बताते हुए उसने लिखा है–

'कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हें,
कहा किये करवत कासी।
कहा भयो भगवा पहरयाँ,
घर तज भये संन्यासी।
जोगी होय जुगति नहिं जानी,
उलटी जनम फिर आसी।।'[17]

मीरा ने मानव-जन्म को दुर्लभ व अमूल्य बताया है। मानव को पुण्यों के प्रताप से ही इस जीवन की प्राप्ति होती है, अतः इसे व्यर्थ न गँवाना चाहिए–

'नहिं ऐसो जन्म बारंबार।
का जानूँ कुछ पुण्य प्रगटे, मानुसा अवतार।
बढ़त छिन-छिन घटत पल-पल,
जात न लागै बार।
बिरछ के ज्यूँ पात टूटे, बहुरि न लागै डार।'[18]

संतों की भाँति मीरा ने भी विषय-विकारों को त्याज्य कहा है। जब तक मन में काम, क्रोध, मोह आदि विकार रहेंगे, जीव को प्रभु का साक्षात्कार नहीं हो सकता, इसीलिए मीरा ने काम को 'कूकर', मोह को 'चंडाल' तथा क्रोध को 'कसाई' कहा है।[19] संतकवि कबीर ने इस शरीर की क्षणभंगुरता को रेखांकित करते हुए मानव को अहंकार से बचने की सीख दी है–

'कबीर कहा गरबियो, इस जोवन की आस।
केसू फूले दिवस दोइ, खंखर भये पलास।।'[20]

मीरा ने भी संसार की नश्वरता को उजागर करते हुए मानव को इस शरीर पर गर्व करने से बचने की सीख दी है–

'इण देही का गरब न करना,
माटी में मिल जासी।
यो संसार चहर की बाजी,
साँझ पड़याँ उठ जासी।।'[21]

मानव को कुसंगति त्यागकर सत्संग करने की प्रेरणा देते हुए मीरा कहती है–

'तज कुसंग सतसंग बैठे नित,
हरि चरना सुण लीजै।'

• • •

'काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ,
चित से बहाय दीजै।'[22]

संत काव्य रहस्यवाद से अनुस्यूत है। कबीर के काव्य में इसका भव्य रूप दिखाई देता है। मीरा के काव्य में भी रहस्यवादी अनुभूतियों की व्यंजना हुई है। उसके पदों में 'तुम मोरे हूँ तोरे' 'तुम बिच हम बिच अंतर नाहीं,' 'म्हारा पिया म्हारे हियड़ें बसताँ, णा आवाँ णाँ जाती,' 'रोगी अंतर बैद बस्त है' आदि पंक्तियाँ इसकी परिचायक हैं।

मीरा के काव्य में सपाटबयानी व विद्रोह की वैसी ही वृत्ति दिखाई देती है, जिसके लिए संत काव्य के प्रतिनिधि कवि कबीर जाने जाते हैं। यद्यपि मीरा मध्ययुगीन सामंती व आभिजात्य परिवेश में पोषित हुई थी, लेकिन यही परिवेश जब उसके प्रभु-प्रेम में बाधक बना तो उसने साहस व निर्भयतापूर्वक उसका विरोध किया। न तो कुल की मर्यादा को और न सामाजिक बंधनों को उसने अपनी साधना के मार्ग की बाधा बनने दिया। राणा की धमकियों ने उसकी विद्रोह की वृत्ति को और भी उग्र बना दिया। किसी ने उसे 'कुलनासी'

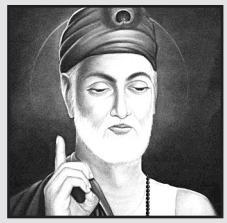

मीरा का विद्रोह कबीर के विद्रोह की तरह साधन है, साध्य नहीं। इन दोनों का साध्य है ऐसे भाव की प्राप्ति, जो समस्त सुविधाओं, द्वैतों और भेदों से ऊपर उठा दे, सर्वात्मवाद में प्रतिष्ठित कर दे। दोनों को साध्य प्राप्ति की गहरी बेचैनी है।

कहा तो किसी ने 'बावरी', लेकिन उसने किसी की भी परवाह नहीं की। निम्नलिखित पंक्तियाँ उसकी विद्रोहात्मकता की परिचायक हैं–

'लोकलाज कुल की मरजाद
यामैं एक न राखूँगी।[23]
लोका कहैं मीरा भई बावरी,
न्यात कहैं कुलनासी रे।[24]
राजकुल की लाज गमाई,
सांच्या संग मैं भटकी।'[25]

मीरा की विद्रोहात्मकता व कबीर की इस वृत्ति की तुलना करते हुए डॉ. विद्यानिवास मिश्र लिखते हैं– ''मीरा का विद्रोह कबीर के विद्रोह की तरह साधन है, साध्य नहीं। इन दोनों का साध्य है ऐसे भाव की प्राप्ति जो समस्त सुविधाओं, द्वैतों और भेदों से ऊपर उठा दे, सर्वात्मवाद में प्रतिष्ठित कर दे। दोनों को साध्य प्राप्ति की गहरी बेचैनी है, इसीलिए जितने भी अवरोधक कारण हो सकते हैं, उन्हें तोड़कर उनके आगे निकल जाने का उत्साह उतना अधिक है।''[26]

मीरा की विचारधारा व काव्य की विषयवस्तु ही नहीं, उसका अभिव्यंजना पक्ष भी संत काव्य से प्रभावित है। उसके पदों के विन्यास पर कबीर की शैली का प्रभाव लक्षित किया जा सकता है। इस संदर्भ में आ. विश्वनाथ त्रिपाठी का मत उद्धरणीय है– ''मीरा के पूर्व कबीर गेय पद लिख चुके थे। विद्यापति, सूरदास, तुलसीदास थोड़ा आगे-पीछे लगभग समकालीन थे। इन सबके गेय पदों में सबसे ज्यादा कबीर की भाषा में गद्यात्मकता या सुविन्यस्त वाक्य गठन मौजूद है। इसलिए कहा जा सकता है कि मीरा के गेय पदों में जो सुविन्यस्त वाक्यगठन मौजूद है, शैली रूप में वह विशेषता उन्हें परंपरा से प्राप्त हुई थी।''[27] मीरा की भाषा पर भी संत-शब्दावली का प्रभाव है। मीरा ने भी ईश्वर को 'रमैया' व 'रमइया' कहके संबोधित किया है 'सुरत', 'निरत', 'गगन मंडल', 'सुनौ', 'सेज' आदि अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग भी मीरा के काव्य में सहज रूप से हुआ है। इस संदर्भ में निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

'गगन मंडल पै सेज पिया की
किस बिध मिलना होय।[28]
सुरत निरत का दिवला सँजोले,
मनसा की कर ले बाती।[29]
प्रेम हटी का तेल मँगा ले,
जगे रह्या दिन ते राती।
पिय बिन सूनौ म्हारौ देस [30]
सागर सूख कमल मुरझाना,
हंसा कियो पयाना।
भौंरा रह गये प्रीत के धोके,
फेर मिलन को जाना।'[31]

मीरा के काव्य में प्रयुक्त ऐसे शब्दों के संदर्भ में आ. परशुराम चतुर्वेदी का कथन है– ''मीरा की साधना का तीसरा रूप उनके निर्गुण संप्रदाय या संतमत विशिष्ट सुरति शब्द योग को अपनाने के संबंध में रचे गए पदों द्वारा भी लक्षित हुआ जान पड़ता है। वे 'त्रिकुटीमहल' में बने हुए 'झरोखे' से झाँकी लगाती हैं और 'सूने महल में सुरत जमाकर सुख की सेज बिछाती' हुई दीख पड़ती हैं। 'सुमिरण थाल' को हाथ में लेकर तथा 'सेज सुखमणा' पर सुशोभित होकर अपने लिए 'सुभ घड़ी' मानती हुई जान पड़ती हैं। वे अपने 'पिया की सेज' का

'गगन मंडल' में होना बतलाती हैं। 'बिन करताल पखावज' की सहायता के भी अपने घर के भीतर 'अनहद की झंकार' सुना करती हैं। इष्टदेव 'आदि अनादि साहब', 'निरंजन' अथवा 'ब्रह्म' के साथ एकाकार हो जाने की चेष्टा में अपनी सुरत के झकोला खाने की चर्चा करती हैं।''[32]

मीरा के काव्य की भाषा का रूप संत कवियों की भाषा के समान मिश्रित है। प्रमुखतया उसमें राजस्थानी व ब्रजभाषा की शब्दावली प्रयुक्त है, गौण रूप से गुजराती व पंजाबी के शब्द भी मिलते हैं। संत कवियों के समान ही अलंकारों के प्रति उन्हें विशेष मोह नहीं। निरलंकृति अथवा अभिधात्मकता उनके काव्य की विशिष्टता है।

अंत में कहा जा सकता है कि मीरा संतमत से पर्याप्त प्रभावित थी। उसके अनेक पद इस प्रभाव के परिचायक हैं। इनमें संत काव्य की भाँति सतगुरु की अनुकंपा व महिमा का गान किया गया है। प्रभु स्मरण व सदाचार पर बल दिया गया है। इस संसार की नश्वरता को रेखांकित करते हुए विषय-विकारों व मायासक्ति को त्याज्य बतलाया गया है। संतों के सामान ही बाह्याचारों का खंडन किया गया है। गिरधर की अनन्य उपासिका होते हुए भी मीरा ने निःसंकोच भाव से 'राम', 'रमैया,' 'सुरत' व 'निरत' आदि शब्दों का प्रयोग किया है। उसकी रहस्यानुभूतियाँ भी संत कवियों के अनुरूप हैं। संक्षेप में, मध्ययुग की यह अमर साधिका सगुण व निर्गुण के बीच की सम्मोहक कड़ी है। ■

(लेखक शिक्षाविद्, साहित्यकार व पत्रकार हैं)

संदर्भ

1. 'मीरा मुक्तावली', सं. डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश', पृ. 71
2. वही, पद 10, पृ. 3
3. 'हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास', सं. पं. परशुराम चतुर्वेदी, चतुर्थ भाग, पृ. 407
4. 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास', डॉ. बच्चन सिंह, पृ. 143
5. 'मीरा व्यक्तित्व और कृतित्व', डॉ. पद्मावती शबनम, पृ. 188
6. मीरा मुक्तावली, पद 8, पृ. 2
7. वही, पद 8, पृ. 2
8. वही, पद 10, पृ. 3
9. 'कबीर–ग्रंथावली', सं. माता प्रसाद गुप्त, पृ. 2
10. 'मीरा मुक्तावली', पद 16, पृ. 4
11. 'कबीर–ग्रंथावली', सं. माता प्रसाद गप्त, पृ. 32
12. 'मीरा मुक्तावली', पद 86, पृ. 19
13. 'कबीर–ग्रंथावली', पृ. 8
14. 'मीरा मुक्तावली', पद 85 पृ. 19
15. वही, पद 15 पृ. 4
16. वही, पद 99 पृ. 23
17. 'मीरा मुक्तावली', पद 5, पृ. 2.
18. वही, पद 6, पृ. 2
19. वही, पद 99, पृ. 23
20. 'कबीर वाङ्मय', खंड 3 सं. जयदेव सिंह, डॉ. वासुदेव सिंह, पृ. 104
21. 'मीरा मुक्तावली', पद 5, पृ. 2
22. वही, पद 86, पृ. 19
23. 'मीरा मुक्तावली', पद 43, पृ. 10
24. वही, पद 20, पृ. 5
25. वही, पद 10, पृ. 3
26. 'लागौ रंग हरी : श्याम रसायन', डॉ. विद्यानिवास मिश्र, पृ. 58
27. 'मीरा का काव्य' : आ. विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ. 96
28. 'मीरा मुक्तावली', पद 43, पृ. 15
29. वही, पद 11, पृ. 3
30. वही, पद 66, पृ. 15
31. वही, पद 58, पृ. 13
32. 'मध्यकालीन प्रेम साधना', परशुराम चतुर्वेदी, पृ.134

बनवारी

खाप पंचायतें भारतीय समाज की कोई अलग और अनोखी संस्था नहीं हैं, बल्कि वे उस पंचायती व्यवस्था का एक अधिक शक्तिशाली स्वरूप हैं, जो पूरे भारतीय समाज में व्याप्त रही है और उसकी कार्यप्रणाली, दायित्व और मर्यादाएँ भी वही हैं, जो पूरे भारतीय समाज के सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक संगठन में दिखाई देती हैं। उनकी विशेषता सिर्फ इतनी ही है कि इस पंचायती शासन की रीढ़ संख्या बहुल जाट रहे हैं, जिन्होंने अपने भीतर राजतांत्रिक महत्त्वाकांक्षाओं को पनपने नहीं दिया।

खाप पंचायतें ऐतिहासिक संदर्भ

अंग्रेजी शिक्षा ने हमारे मन में अपनी व्यवस्थाओं के प्रति जो अज्ञान भर दिया है, उसी का परिणाम है कि खाप पंचायतों के केवल कुछ अप्रिय और अनुचित निर्णयों को लेकर उन्हें प्रतिबंधित करने के लिए छेड़ा गया अभियान। आज के सत्ता प्रतिष्ठान में उनके लिए जो द्वेष और घृणा फैली हुई है, वह उनके इतिहास और स्वशासन की सबसे महत्त्वपूर्ण इकाई के रूप में अब तक के भारतीय इतिहास में रही उनकी भूमिका के प्रति अज्ञान के कारण ही है। इन खाप पंचायतों की शक्ति और उनके महत्त्व का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि वे पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा और पश्चिमी राजस्थान के जाट बहुल क्षेत्रों में पिछले करीब पंद्रह सौ वर्ष से पूरे समाज की संपूर्ण शासन व्यवस्था सँभाले रही हैं। इस समूचे क्षेत्र में जाटों की संख्या आज करीब दो से ढाई करोड़ है। दूसरी बिरादरियों के करीब साढ़े तीन करोड़ लोग इस क्षेत्र में रहते हैं और ये सभी जातियाँ महाराजा हर्ष से भी पहले से यहाँ के लोगों के सामाजिक और राजनीतिक जीवन को अपनी पंचायतों द्वारा संचालित करती रही हैं। इन पंचायतों की सेनाओं ने बड़े-बड़े युद्ध लड़े और विदेशी आक्रमण के पिछले छह-सात शताब्दी के सबसे कठिन दौर में समाज के आंतरिक संगठन को बनाए रखते हुए उसकी रक्षा की है। 1857 के संग्राम में उनकी महती भूमिका के कारण अंग्रेजों ने उन पर प्रतिबंध लगा दिया था। उस प्रतिबंध के बावजूद वे अपनी भूमिका सफलतापूर्वक निभाती रहीं। 1947 के बाद उनकी उपेक्षा करते हुए एक नया न्यायिक, प्रशासनिक और बाद में पंचायती तंत्र खड़ा किया गया। इस तंत्र ने न केवल खाप पंचायतों को बल्कि उस पंचायती भावना को भी क्षीण कर दिया है, जो सदा से भारतीय समाज के नैतिक संगठन का आधार रही है।

खाप पंचायतें भारतीय समाज की कोई अलग और अनोखी संस्था नहीं है, बल्कि वे उस पंचायती व्यवस्था का एक अधिक शक्तिशाली स्वरूप हैं, जो पूरे भारतीय समाज में व्याप्त रही है और उसकी कार्यप्रणाली, दायित्व और मर्यादाएँ भी वही हैं, जो पूरे भारतीय समाज के सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक संगठन में दिखाई देती हैं। उनकी विशेषता सिर्फ इतनी ही है कि इस पंचायती शासन की रीढ़ संख्या बहुल जाट रहे हैं, जिन्होंने अपने भीतर राजतांत्रिक महत्त्वाकांक्षाओं को पनपने नहीं दिया। वे जिस कुरु जांगल प्रदेश में बसे हुए थे, वहाँ की कठिन परिस्थितियों में भाईचारा व्यवस्था दृढ होना स्वाभाविक ही था, दिल्ली के चारों तरफ फैला यह वही क्षेत्र था, जिसे पहले मुसलिम आक्रांताओं और फिर अंग्रेजों के बर्बर शासन को लगातार झेलना पड़ा। इस चुनौती ने उन्हें मजबूत ही बनाया और उन्होंने कभी इन विदेशी शक्तियों के सामने घुटने नहीं टेके, बल्कि उन्हें अपनी शक्ति मानने के लिए विवश किया। औरंगजेब के अत्याचारी शासन का सामना करने के लिए 1665 में उन्होंने गोकुल जाट को एक बड़ी सेना खड़ी करने के लिए चुना था। इसी कड़ी में भरतपुर राजवंश का उदय

हुआ, जिसकी कीर्ति बदन सिंह और सूरजमल के समय सबसे अधिक थी और मुगल शक्ति को छिन्न-भिन्न करने का काफी श्रेय इन जाट राजाओं को दिया जाता है, पर उनका शासन भरतपुर के आस-पास ही था और उन्होंने खाप पंचायतों के शासन में कभी कोई हस्तक्षेप नहीं किया। खाप पंचायतों की मूल इकाई उसी तरह वंश या कुल हैं, जिस तरह वे दुनिया भर में समाज की मूल इकाई रहे हैं। इसी आधार पर नृशास्त्रियों ने उनकी तुलना जनजातीय कबीलों से की है, लेकिन ये खाप पंचायतें केवल सगोत्रीय या एकदेशीय सभाएँ नहीं हैं, जैसा कि कबीलाई या उसके समकक्ष सामाजिक संगठनों में होता है। पंचायत स्वराज्य की, स्वशासन की एक नैतिक व्यवस्था है। पंचायती शासन केवल अपने सदस्यों के हित की रक्षा के लिए नहीं होता। वह धर्म की, उसके मूलभूत नियमों की रक्षा के लिए है। इसलिए पंचायतें पूरे भारतीय समाज की उत्तरोत्तर स्तरों पर एकता बनाए रखने की वाहक रही हैं, कभी उसके विभेद की कारक नहीं बनीं। नृशास्त्री यह भूल जाते हैं कि कबीलों के बीच जिस तरह वर्चस्व की लड़ाई होती रही है, वैसी पूरे खाप पंचायत क्षेत्र में कहीं, कभी नहीं रही। खाप पंचायतों के क्षेत्र में सिर्फ जाटों के ही लगभग पौने तीन सौ वंश अर्थात् गोत्र हैं। उनमें जिस तरह का सद्भाव और सहयोग पिछली डेढ़ सहस्राब्दि में रहा है, वैसा दुनिया में कहीं देखने को नहीं मिलेगा। इसके अलावा हर खाप क्षेत्र में एक-डेढ़ दर्जन दूसरी जातियाँ रहती हैं। खाप पंचायत का पूरा ढाँचा ही ऐसा है कि उसमें सभी जातियाँ अनोखे सद्भाव और सहकार के साथ रहती आई हैं। उन्होंने एक-दूसरे की स्वायत्तता की रक्षा करते हुए परस्पर एकता बनाए रखी है। इसका एक उदाहरण सर्वखाप पंचायत के अभिलेखों में उल्लिखित यह वर्णन है। ईस्वी 1680 की यह घटना मुजफ्फरनगर जिले की मुख्य खाप बालियान के एक गाँव रघुवीरपुरा से संबंधित है। गाँव के निवासी चौधरी

हर खाप क्षेत्र में एक-डेढ़ दर्जन दूसरी जातियाँ रहती हैं। खाप पंचायत का पूरा ढाँचा ही ऐसा है कि उसमें सभी जातियाँ अनोखे सद्भाव और सहकार के साथ रहती आई हैं। उन्होंने एक-दूसरे की स्वायत्तता की रक्षा करते हुए परस्पर एकता बनाए रखी है।

घुरकूराम के आठ वर्षीय पुत्र करार सिंह को गाँव की वाल्मीकि बिरादरी के छांगा नाम के व्यक्ति ने आभूषणों के लालच में और तंत्र-मंत्र के उद्देश्य से मारकर कच्चे कुएँ में फेंक दिया। उसी बिरादरी की एक महिला ने उसका यह कृत्य देखा और गाँव की पंचायत बुलाई गई। इस पंचायत में सभी जातियों के तीन सौ पचपन लोग उपस्थित थे। पंचायत में छांगा ने स्वीकार किया कि उसने शराब के नशे में भूत-प्रेतों को बलि देने के उद्देश्य से यह हत्या की थी। इस स्वीकारोक्ति के बाद उसे दंडित करने के लिए ग्राम पंचायत ने उसे वाल्मीकि बिरादरी को सौंप दिया। पंचायत में उस समय वाल्मीकि बिरादरी के 19 लोग उपस्थित थे। उन्होंने सबसे पहले पूरी ग्राम पंचायत से यह वचन लिया कि उनका जो भी निर्णय

होगा, वह पूरी पंचायत को स्वीकार होगा। फिर उनकी पंचायत बैठी और पंचायत में निर्णय हुआ कि छांगा ने लोभ में आकर एक अबोध बच्चे की हत्या की है। यह पाप क्षमा के योग्य नहीं है, इसलिए उसे मृत्युदंड दिया जाए। फिर सारी ग्राम पंचायत ने वाल्मीकि पंचायत के इस निर्णय का अनुमोदन किया।

यह पंचायती शासन किस तरह के भाईचारे पर टिका रहा है, इसका उदाहरण महम चौबीसी से पाया जा सकता है। सामान्यतया जाटों के गोत्र पाँच गाँव से लगाकर साठ-सत्तर गाँवों तक में फैले हुए हैं। लेकिन महम क्षेत्र के चौबीस गाँवों में बहुत छोटे-छोटे वंश हैं, जिनके भीतर पंद्रह-बीस परिवार ही हैं। इसलिए यहाँ पंचायत की रीढ़ जाटों का कोई एक वंश नहीं हो सकता था। इस समस्या का हल यह निकाला गया कि महम के चौबीस गाँवों ने अपने आप को एक पंचायत के रूप में परिवर्तित करने का निर्णय लिया। एक पंचायत का होने के नाते उनमें भाईचारे का संबंध हो गया और चौबीस गाँवों के बीच अंतर-खाप विवाह संबंध वर्जित कर दिए गए। वंशानुगत भाईचारे के बिना भी सुदीर्घ काल तक भाईचारा बनाए रख पाना साधारण उपलब्धि नहीं है। चौबीस गाँव की पंचायत होने के बावजूद महम चौबीसी की बहुत ख्याति रही है और महम में पंचायत का चबूतरा व उसके साथ बनाया गया जलाशय देखने लायक है। वास्तव में भाईचारा एक सभ्यतागत गुण है, जो भारतीय समाज का सदा से आधार रहा है। नृशास्त्री कहेंगे कि जाति के रूप में जाट किसी मूल व्यक्ति के परिवार का विस्तार ही हैं और जाटों के सभी गोत्र बढ़ते गए मूल परिवार की शाखाएँ, प्रशाखाएँ ही हैं, इसलिए उनके बीच बंधुत्व की भावना जनजातियों के बीच पाई जाने वाली बंधुत्व की भावना से भिन्न नहीं है। पर खाप पंचायतों का भाईचारा ऐसा नहीं है, यह बात तो इसी से सिद्ध है कि यह भाईचारा केवल जाटों तक सीमित नहीं है। खाप के भीतर भी सभी जातियों के बीच भाईचारे का ही संबंध है, लेकिन एक जाति के रूप में जाट किसी एक मूल परिवार का विस्तार हैं, यह धारण भी सही नहीं है। जाटों के उद्‌भव के बारे में उनके बीच प्रचलित जो सबसे प्रसिद्ध मान्यता है, वह यह है कि वे भगवान शिव की जटाओं से उत्पन्न हुए हैं। जाट सामान्यतया शैव हैं और शिव की जटाओं का यह रूपक उनके बारे में बहुत सार्थक है। जैसा कि पाणिनि के धातुपाठ से स्पष्ट है। जाट संज्ञा समूह के अर्थ में प्रयुक्त होती थी। इस तरह जाट विभिन्न वंशों का एक ऐसा समूह हैं, जो समान कर्म और उद्‌देश्य के कारण एक जाति के रूप में परिवर्तित हो गए। केवल जाट ही नहीं, भारत की सभी जातियों का उदय इसी तरह हुआ दिखाई देता है। जाति भी कोई स्थिर इकाई नहीं है, जैसा

कि उसे चित्रित किया जाता रहा है। वह एक प्रवहमान इकाई है, उसमें नए वंश सम्मिलित होते रहते हैं और कालक्रम में कुछ पुराने वंश बाहर निकलकर दूसरी जातियों में विलीन हो जाते हैं। जाटों के सभी गोत्र समान माने जाते हैं, फिर भी सर्वखाप पंचायत की चौधर मुजफ्फरनगर की बालियान खाप के पास रही है। बालियान खाप का चौधरी सिसौली गाँव का रहा है और मंत्री सोरम गाँव का। सोरम गाँव में ही सर्वखाप पंचायत

के अभिलेख रखे जाते रहे हैं। इन अभिलेखों के अनुसार बालियान खाप के पूर्वज बलवंश के नाम से जाने जाते थे। यह नाम प्रसिद्ध राजा बलि के नाम पर पड़ा, जो भक्त प्रह्लाद के पौत्र विरोचन के पुत्र थे और अपनी दानप्रियता के कारण प्रसिद्ध हुए। उनकी दानप्रियता को आदर्श मानकर बलवंशियों ने उनके नाम पर ही अपने वंश का नाम रख लिया। मान्यता है कि बलवंशी अयोध्या से श्रावस्ती जाकर बसे। फिर वहाँ से विक्रम संवत् 210 में पहले पंजाब के लोहकोट, जिसे लवपुरी भी कहते थे और आज जिसे लाहौर कहते हैं, वहाँ आए। वहाँ से विक्रम संवत् 301 में बलवंशी राजकुमार कनकसेन ने सौराष्ट्र में माली नदी के किनारे बलि राजा के नाम पर बला नगरी बसाई, जिसका कालांतर में नाम बल्लभीपुर हो गया। बल्लभीपुर में बल्लभी नरेशों ने विक्रम संवत् 545 से 824 तक स्वतंत्र शासन किया। विक्रम संवत् 824 में अरबों के आक्रमण के कारण बल्लभी राज्य समाप्त हो गया। उसके बाद उनकी एक शाखा स्यालकोट चली गई और दूसरी ने हिसार क्षेत्र में धावनी नगर और बालौर दो जनपद बसाए। बालौर के बाद उन्होंने बालियानों का महलाना ग्राम बसाया, जो सोनीपत के पास है। बालियान वंश के लोगों ने धावनी नगर से निकलकर उत्तर प्रदेश के शामली कस्बे के पास पहले माजू भनेड़ा गाँव बसाया और फिर 12वीं शताब्दी में सिसौली बसाया, जिसका मूल नाम शिवपुरी था। वहाँ होली पर एक मेला लगता था। इसीलिए पहले उसका नाम शिवहोली हुआ और फिर बिगड़कर सिसौली हो गया। संवत् 1301 में शिवपुरी के एक बहादुर जाट नेता राव देवराणा ने 4500 योद्धाओं के साथ आसपास के क्षेत्रों को जीतकर शांति स्थापित की थी और उनके भाइयों व दो पुत्रों ने कृष्णा (काली) और हरनदी (हिंडन) के बीच के दोआबे के प्रसिद्ध ग्राम सोरम पर अधिकार करके उसे सर्वखाप पंचायत का मुख्यालय बना दिया था।

संवत् 1301 में शिवपुरी के एक बहादुर जाट नेता राव देवराणा ने 4500 योद्धाओं के साथ आसपास के क्षेत्रों को जीतकर शांति स्थापित की थी और उनके भाइयों व दो पुत्रों ने कृष्णा (काली) और हरनदी (हिंडन) के बीच के दोआबे के प्रसिद्ध ग्राम सोरम पर अधिकार करके उसे सर्वखाप पंचायत का मुख्यालय बना दिया था।

लगभग इसी तरह का इतिहास जाटों के दूसरे प्रमुख गोत्रों का है। उदाहरण के लिए, सांगवान खाप का आरंभ जिस पराक्रमी व्यक्ति से हुआ, उसका नाम सिंहराम या सांगु था। उसके 13-14 पूर्वजों ने मारवाड़ के सारसु जांगला क्षेत्र पर राज किया था। इस वंश की पंद्रहवीं पीढ़ी के लहरी सिंह मारवाड़ छोड़कर अजमेर आ गए। वहाँ उन्होंने लिहड़ी गाँव बसाया। उनके बाद दसवीं पीढ़ी में राणा नैनसुख और 11वीं पीढ़ी में सांगु पैदा हुए। 22 वर्ष की आयु में वे अजमेर छोड़कर अपने पिता के साथ हरियाणा की दादरी के निकट असावरी की पहाड़ी पर आए और बाघनवाल नाम का गाँव बसाया। जागों की बहियों के अनुसार यह विक्रमी संवत् 1323 की घटना है। जब तक यह वंश मारवाड़ और अजमेर मे था, उसका उल्लेख राजपूतों की तरह हुआ है। नैनसुख के दो पत्नियाँ और चार पुत्र थे। शेखु के नाम पर शेखावत, जाखु के नाम पर जाखड़ और सांगु के नाम पर सांगवान वंश चला।

सांगु ने हरियाणा में कोई राज्य स्थापित नहीं किया। इस क्षेत्र में लूटपाट और अशांति थी। अपने साथ आए लड़ाकों के साथ सांगु ने इस क्षेत्र में शांति स्थापित की। उसके बाद पास के अत्याचारी मुसलिम सूबेदारों की इस क्षेत्र से होकर जाने वाली फौजों और साधन-सामग्री पर

छापे डालने शुरू किए। कई पत्नियों से सांगु के तेरह पुत्र और 52 पौत्र हुए। सांगु के साथ जो परिवार यहाँ आए होंगे, वे भी कालांतर में सांगु वंश के गिने गए। इन सब का विस्तार चालीस गाँव तक हो गया। इस तरह सांगवान खाप चालीस के नाम से प्रसिद्ध हुई। अब इस खाप के 61 गाँव हैं, फिर भी इसकी प्रसिद्धि सांगवान चालीस के रूप में ही है। सांगु के पूर्वज राजपूत कहलाते थे, पर हरियाणा में उनकी जाति जाट हो गई।

सर्वखाप पंचायत के सोरम स्थित अभिलेखों के अनुसार पंचायती शासन के वृत्तांत बल्लभीपुर से आरंभ होते हैं। उनसे पता लगता है कि वहाँ सेन राजा पंचायतों के अनुमोदन से ही राज्य कर रहे थे। इतिहासकारों ने पुराने वैशाली आदि के गणराज्यों के आधार पर यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि पुराने समय में कुछ जगह गणतंत्र थे और कुछ जगह राजतंत्र। वास्तव में भारतीय समाज में राजाओं की भूमिका सीमित ही रही है। उनका मुख्य कार्य तो बाहरी आक्रमण से देश की रक्षा करना ही था। इसके अतिरिक्त उनकी भूमिका दंड विधान के रक्षक और शास्त्र के सहायक तथा कला-कौशल के आश्रयदाता की थी। वास्तविक शासन तो सभी जगह पंचायतों के ही अधीन था। सर्वखाप पंचायत के अभिलेखों के अनुसार हूणों को पराजित करने वाले अपने भाई राज्यवर्धन की बंगाल के राजा शशांक द्वारा धोखे से हत्या कर दिए जाने के बाद जब सोलह वर्ष के किशोर हर्षवर्धन को वैराग्य हुआ तो स्वामी शांतानंद की अध्यक्षता में थानेश्वर में पंचायत हुई, जिसमें एक लाख इकसठ हजार लोग थे। उन्होंने राज्य की स्थिति पर विचार करने के बाद हर्षवर्धन से राजगद्दी सँभालने का अनुरोध किया। इसके बाद पंचायतों के 561 प्रधानों ने उन्हें विधिवत् राजा के रूप में चुना और उनका राज्याभिषेक किया गया। यह तो प्रसिद्ध ही है कि जब उत्तरापथ की विजय के बाद हर्षवर्धन कन्नौज की गद्दी पर बैठे थे तो एक लाख ग्राम प्रमुखों ने उनका अनुमोदन किया था। पंचायती अभिलेखों के अनुसार सम्राट् हर्ष ने पंचायतों का एक विशाल सम्मेलन आयोजित किया था और अपने दामाद बल्लभी नरेश ध्रुवभट्ट सेन को उनका संरक्षक घोषित किया था।

महाराजा हर्ष द्वारा आहूत इस विशाल पंचायती सम्मेलन के बाद से हर पाँच साल बाद पंचायतों का सम्मेलन आयोजित होता रहा। इन पंचायतों का औपचारिक ढाँचा न्यून ही रहा है। सर्वखाप पंचायत का अध्यक्ष तो हर सम्मेलन या बैठक के समय ही सर्वानुमति से चुना जाता है, लेकिन उसका मंत्रीपद स्थायी रूप से किसी परिवार के पास रहता है, ताकि पंचायत के अभिलेख सुरक्षित रह सकें। विक्रम संवत् 1365 में हरिद्वार में चैत्र बदी दोज को 185 खापों का एक सम्मेलन हुआ था, जिसमें लगभग 45000 हजार प्रतिनिधि उपस्थित थे। इस सम्मेलन में बालियान खाप को प्रधान खाप और उसके सोरम गाँव को मंत्री पद दिए जाने की घोषणा हुई थी। उस समय सोरम गाँव के सबसे प्रतिष्ठि व्यक्ति राव रामराणा थे। उन्हीं को प्रथम मंत्री बनाया गया। इस समय उनकी चौबीसवीं पीढ़ी इस दायित्व को सँभाले हुए है। पिछले मंत्री चौधरी कबूल सिंह ने सर्वखाप पंचायत के इतिहास को उजागर करने की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया था। उनके पास पंचायती अभिलेखों की दस-बारह धड़ी (50 से 60 किलो) सामग्री थी। उसके आधार पर बनारस, दिल्ली और ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से तीन शोध प्रबंध अवश्य लिखवाए गए, लेकिन हमारे सरकारी तंत्र और मुख्य इतिहासकारों ने पंचायती अभिलेखों में कोई रुचि नहीं दिखाई।

यह पंचायत व्यवस्था दो समानांतर दिशाओं में कार्यरत रही है। जहाँ जाटों के किसी एक गोत्र के पर्याप्त गाँव हैं, वहाँ एक तरफ उस गोत्र की बहुस्तरीय वंश पंचायत होगी। उदाहरण के लिए, बालियान वंश के चौरासी गाँव हैं। मुगलों के शासन में राजस्व प्राप्ति के लिए ऐसे ग्राम समूहों

को खाप की संज्ञा दी गई। बालियान खाप के क्षेत्र में रहने वाले जाट इतर जातियों की अपनी स्वजातीय खाप पंचायतें हैं। व्यावहारिक कारणों से वंश को थोक और उपथोक में बाँट दिया जाता है। वंश की शाखा का यह नामकरण भी सब जगह नहीं मिलता। कहीं थोक की जगह पाना है, कहीं उसका कुछ और भी नाम हो सकता है। हर वंश या जाति के आंतरिक मामले इन पंचायतों में ले जाए जाते हैं। इनके समानांतर भौगोलिक स्तर पर गठित पंचायतें हैं। सबसे निचली ग्राम स्तरीय पंचायत है। गाँव से बड़ी इकाई गवांड है, जो चार-पाँच गाँवों का समूह होती है। उसके ऊपर थम्भ पंचायत है, जो चार-पांच गवांड से मिलकर बनती है। उसके ऊपर खाप पंचायत है। फिर सर्व खाप पंचायत होती है।

गाँव और गवांड स्तर की पंचायतें अनौपचारिक होती हैं। इन स्तरों पर कोई स्थायी चौधरी या मुखिया नहीं होते। पंचायत की बैठक में ही उस बैठक के अध्यक्ष का निर्वाचन कर लिया जाता है। लेकिन थम्भ, खाप और सर्वखाप स्तर की पंचायतें औपचारिक होती हैं और उनका खाप या सर्वखाप की पोथी में ब्योरा लिखा जाता है। लेकिन कुछ खापें ऐसी भी हैं, जिनके क्षेत्र में कई गोत्र आते हैं अथवा सामान्य हित के किसी विषय के कारण उन्हें मिश्रित खाप क्षेत्र में संगठित किया गया होता है। उदाहरण के लिए, पालम 360 पंचायत के क्षेत्र में 360 गाँव हैं और वह सर्वखाप पंचायत क्षेत्र की सबसे बड़ी पंचायत है। उसका क्षेत्र दिल्ली के मुसलिम शासकों से सटा होने के कारण यहाँ के लोगों को एक होकर युद्ध संबंधी बहुत से फैसले लेने पड़े। बाद में जब अंग्रेजों के शासन में यहाँ के किसानों की भूमि अधिग्रहीत की गई, तब भी यहाँ के गाँवों की पंचायत के रूप में एकता आवश्यक दिखाई दी। खापों के पंचायती ढाँचे में एकरूपता होने को आवश्यक नहीं समझा गया। जाटों के हर गोत्र का अपना एक चौधरी होता है। कहीं वह वंशानुगत है तो कहीं पंचायत द्वारा नियुक्त। जिन गोत्रों में वंशानुगत प्रधान हैं, उन्हें भी योग्यता में खरे न उतरने पर बदला जा सकता है। सामान्यतः जाटों की वंश पंचायत का चौधरी ही खाप पंचायत की अध्यक्षता करता है। पर विषय और परिस्थिति को देखते हुए किसी अन्य महत्त्वपूर्ण व्यक्ति से भी अध्यक्षता करने को कहा जा सकता है। सर्वखाप और उसके नीचे की खाप, थम्भ, गवांड और गाँव की पंचायत में सभी जातियों के प्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं और उनकी एक बराबर हैसियत होती है। सभी जातियों के पंचों का पगड़ी पहनाकर सम्मान किया जाता है। पंचायत की आम सभाओं में स्त्रियाँ भी बड़ी संख्या में भाग लेती रही हैं।

इन पंचायतों का सर्वप्रथम उद्देश्य पूरे समाज की एकता बनाए रखना और उनमें भाईचारा कायम रखना रहा है। पंचायती शासन का आधार नैतिक अनुशासन है, इसलिए पंचायती निर्णयों की सर्व मान्यता रही है। सर्वखाप पंचायत के क्षेत्र में पंचायत की भूमिका काफी विस्तृत रही है। इसे न्याय करने के लिए, सब के हित का कोई निर्णय लेने के लिए, किसी सामाजिक, राजनीतिक या धार्मिक कर्तव्य के निर्वाह के लिए, गुरुकुल, तालाब, धर्मशाला या मंदिर आदि बनवाने के लिए अथवा बाहरी आक्रमण के समय युद्ध की तैयारी के लिए बुलाया जा सकता है। पंचायत के क्षेत्र में सार्वजनिक उपयोग की सब चीजें पंचायती मानी जाती रही हैं। किसी उद्देश्य के लिए इकट्ठे किए गए कोष या दूसरी सामग्री का स्वार्थ के लिए उपयोग घोर पाप समझा जाता रहा है। पंचायत के मुखिया या दूसरे अधिकारियों का सम्मान तो होता है, पर उनके कोई विशेषाधिकार नहीं होते। पंचों का कोई स्थायी समूह भी नहीं होता और हर अवसर पर सर्वानुमति से पंचों का निर्धारण किया जाता है। इसलिए पंचायत सत्ताकामी लोगों की उस होड़ से बची रहती है, जो शासन के किसी स्थायी तंत्र में अनिवार्य दिखाई पड़ती है।

पंचायत के कार्य को अनिवार्य कर्तव्य मानकर किया जाता रहा है। इसलिए पंचायतें सार्वजनिक हित के कार्य करने में सबसे आगे रही हैं। भिवानी क्षेत्र के एक बड़े गाँव झोझूकलाँ में इस पूरे क्षेत्र का सबसे पहला विद्यालय 1891 में स्थानीय पंचायत द्वारा शुरू किया गया था। हरियाणा के दो मुख्यमंत्री बंसीलाल और बनारसी दास इसी स्कूल में पढ़े थे। इस पूरे क्षेत्र में बावड़ियों, सुंदर तालाबों की श्रृंखला है, जो पंचायतों द्वारा बनवाए गए। इन पंचायतों की सबसे अधिक ख्याति यहाँ के अखाड़ों में प्रशिक्षित होते रहे मल्लों के कारण रही है। पंचायतों ने 10 हजार से लेकर एक लाख तक योद्धा विभिन्न लड़ाइयों में विदेशी आक्रमणकारियों का मुकाबला करने के लिए भेजे हैं, जो वेतनभोगी नहीं थे। पंचायतें सैनिक प्रशिक्षण के लिए हरिद्वार, शुक्रताल, गढ़मुक्तेश्वर, मथुरा, बदायूँ, मेरठ, दिल्ली, रोहतक, कुरुक्षेत्र आदि में अखाड़े चलाती रही हैं। पंचायत क्षेत्र के हर गाँव में अच्छी नस्ल के 5-6 घोड़े सदा पाले जाते थे, जो युद्ध के समय काम आते थे। राजाओं की तरह खाप पंचायत की कोई स्थायी वेतनभोगी सेना नहीं थी। पर इस तरह की सुदृढ व्यवस्था थी कि युद्ध के लिए तत्काल एक बड़ी सेना उपलब्ध हो जाए। गाँव-गाँव चलने वाले अखाड़े इस तैयारी के मूल आधार थे। इन अखाड़ों के अपने पंचायती हाथी, घोड़े, ऊँट और खच्चर होते थे, जिनका सारा व्यय पंचायत उठाती थी। अखाड़ों के पास इतने साधन रहते थे कि वहाँ जोर करने वाले मल्लों को दूध-घी और बादाम आदि की पर्याप्त व्यवस्था रहे। मल्लों के लिए सदाचार के कड़े नियम थे। उनसे ब्रह्मचर्य का पालन करने, शाकाहारी भोजन करने और मुसीबत में पड़े या कमजोर व्यक्ति की सहायता करने की सदा आशा की जाती थी। युद्ध के समय राजाओं द्वारा पंचायत से सहायता माँगने के वृत्तांत न केवल सर्वखाप पंचायत के अभिलेखों में भरे पड़े हैं, बल्कि कुछ का उल्लेख आधुनिक इतिहासकारों की लिखी पुस्तकों में भी मिल जाता है। विक्रम संवत् 594 में हूणों को भारत से खदेड़ने के अभियान में सम्राट् यशोधर्मा के निवेदन पर पंचायतों से कोई 75 हजार मल्ल भेजे गए थे। सोमनाथ के विश्व प्रसिद्ध मंदिर को तोड़ने वाले महमूद गजनवी को अंत में पंजाब क्षेत्र की सर्वखाप पंचायत के मल्लों द्वारा खदेड़ा गया था। विक्रम संवत् 1455 में तैमूर ने भारत पर आक्रमण किया था। दिल्ली में तुगलक वंश के सुलतान महमूद का कमजोर शासन था। तैमूर ने दिल्ली में नागरिकों का बर्बरतापूर्वक नरसंहार किया। पर उसके बाद जब वह हरिद्वार की तरफ बढ़ा तो गुर्जर कुल में जनमे योगराज ब्रह्मचारी के नेतृत्व में 80 हजार मल्लों ने जगह-जगह आकस्मिक आक्रमण के द्वारा तैमूर को भारत से वापस भागने के लिए विवश कर दिया। अहमदशाह अब्दाली से पानीपत में हुए युद्ध से पहले मराठों ने खाप पंचायतों से अपनी सेना भेजने को कहा था और अंग्रेजों से लड़ने के लिए 1857 में बहादुरशाह जफर ने खाप पंचायतों से विनती की थी, यह बात तो इतिहास प्रसिद्ध है। मथुरा में कृष्ण जन्मभूमि पर आक्रमण से आहत होकर ही सर्वखाप पंचायत ने गोकुल जाट को एक बड़ी सेना का सेनापति बनाया था। इस निर्णय में गुरु रामदास का उद्बोधन भी सहायक हुआ था। अपने निरंतर युद्ध के

अनेक युद्धों में उपसेनापति या मुख्य सलाहकारों के पद पर वाल्मीकि जाति के योद्धा चुने गए। युद्ध की शिक्षा देने वाले अखाड़ों में वाल्मीकि युवक बाकी सब मल्लों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर जोर करते थे। अखाड़ों की पाकशाला से ही उन्हें अन्य मल्लों के समान भोजन परोसा जाता था।

द्वारा खाप पंचायतों ने कई मुगल शासकों को गोवध न करने, मंदिर न तोड़ने, जजिया हटाने, जबरन किसी हिंदू स्त्री से विवाह न करने और पंचायती शासन में हस्तक्षेप न करने जैसी शर्तें मानने को विवश किया था। पंचायतों में समाज के प्रति जिस तरह की दायित्व की भावना रहती थी, इसका एक उदाहरण विक्रम संवत् 1798 की फाल्गुन द्वितीया को हरिद्वार में बुलाई गई पंचायत है। इस पंचायत में पश्चिमी उत्तर प्रदेश की सभी 18 खापों ने भाग लिया था। इस पंचायत की अध्यक्षता संत रामशरण ने की थी और उसमें बड़ी संख्या में लोग उपस्थित हुए थे। पंचायत नादिरशाह से युद्ध में मारे गए मल्लों के परिवारों की सहायता के लिए बुलाई गई थी। पंचायत में निर्णय किया गया कि नादिरशाह से युद्ध में जो आठ हजार मल्ल मारे गए हैं, उनके परिवारों का समूचा दायित्व खाप पंचायतों का है। मृत योद्धाओं की बेटियों के विवाह का दायित्व खाप पंचायतें उठाएँगी। उनके बच्चे जब तक बालिग होकर अपने पैरों पर खड़े नहीं हो जाते, तब तक उनकी शिक्षा और भरण-पोषण का दायित्व भी पंचायतें सँभालेंगी। उनके परिवारों को इस संकट की घड़ी में जिस भी तरह की सहायता की आवश्यकता होगी, वह खाप पंचायतें देंगी। सामाजिक दायित्व की भावना का एक दूसरा उदाहरण स्वतंत्र भारत में 1950 में हुआ सर्वखाप पंचायत का पहला सम्मेलन है। यह सम्मेलन सोरम में हुआ था और उसमें साठ हजार लोगों ने भाग लिया था। तीन दिन तक चली पंचायत की इस बैठक में गूजरों की कलशलायन खाप के चौधरी को अध्यक्ष चुना गया। पंचायत में चौदह प्रस्ताव पारित करके शादी-विवाह के समय दहेज, तड़क-भड़क और बड़ी बारातों पर पाबंदी लगा दी गई। इन प्रतिबंधों का लंबे समय तक असर रहा।

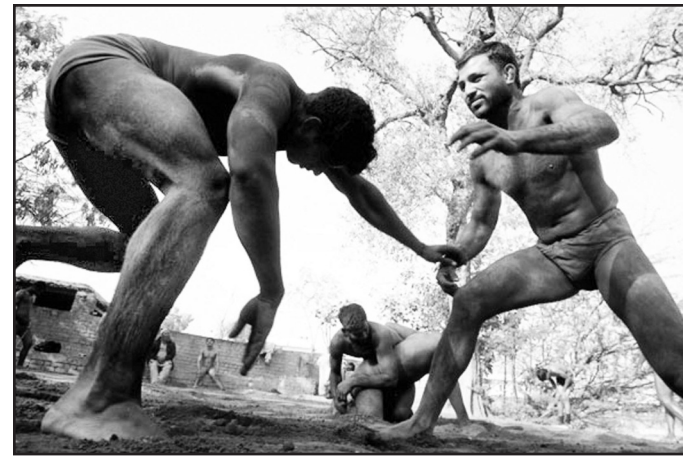

यद्यपि पंचायतों को निरंतर युद्ध लड़ने पड़े, फिर भी यह उनका आपद्धर्म ही था। उनका सामान्य दायित्व तो समाज की एकता बनाए रखना, लोगों में भाईचारा दृढ करना, न्याय करना और लोकहित के वे सभी काम करना था, जो समाज के कल्याण और उसकी अभिवृद्धि के लिए आवश्यक हों। अपनी इस भूमिका में खाप पंचायतें वे सभी दायित्व लिए हुए थीं, जो भ्रमवश आधुनिक राज्य की विशेषता माने गए हैं। इतना ही नहीं, अपने इन सभी दायित्वों का निर्वाह पंचायतें बिना किसी नौकरशाही के, स्वराज्य के सिद्धांत के आधार पर करती थीं। पंचायतों को इस बात का संतोष था कि उनके पास मार्गदर्शन के लिए योग्य ब्राह्मण हैं, रिकार्ड रखने के लिए कायस्थ, सामाजिक और पंचायती अभिलेखों के लिए भाट और मुनादी के लिए वाल्मीकि। उनके सभी कार्यों में स्त्रियाँ बढ़-चढ़कर भाग लेती थीं। युद्ध के समय भी स्त्रियों का बड़ा समूह सहायक कर्तव्य निभाने के लिए उपस्थित रहता था। कुछ वीरांगनाओं ने तो शस्त्र सज्जित होकर बाकायदा युद्ध में भाग लिया। जिस तरह के जातीय भेदभाव की लांछना भारतीय समाज पर डाली जाती है, वह खाप पंचायतों के व्यवहार में कहीं दिखाई नहीं देता। अनेक

युद्धों में उपसेनापति या मुख्य सलाहकारों के पद पर वाल्मीकि जाति के योद्धा चुने गए। युद्ध की शिक्षा देने वाले अखाड़ों में वाल्मीकि युवक बाकी सब मल्लों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर जोर करते थे। अखाड़ों की पाकशाला से ही उन्हें अन्य मल्लों के समान भोजन परोसा जाता था। पंचायत की बैठकों में सभी जाति के लोग एक साथ ही बैठते थे। इतना ही है कि पंचायत की बैठकों में पुरुषों और स्त्रियों के बैठने की व्यवस्था अलग-अलग होती थी। सर्वहित के निर्णय करने वाली पंचायतों में सामान्यतः सभी लोग आमंत्रित होते हैं। लेकिन नीतिगत पंचायत की विशेष बैठकों में खापों के चौधरी और दूसरे प्रतिष्ठित व्यक्ति ही उपस्थित रहते हैं। ऐसी बैठकों में पहले आमतौर पर नौजवानों को नहीं बुलाया जाता था। यह मान्यता थी कि ऐसे निर्णयों में जिस परिपक्व बुद्धि की आवश्यकता होती है, वह आयु के साथ ही आती है। न्याय करने वाली पंचायतों का तो और भी विस्तृत विधि-विधान रहा है। सामान्यतः ऐसी पंचायतें तभी बुलाई जाती हैं, जब कोई पक्ष शिकायत लेकर आए। पंचायतों में दोनों पक्षों की सहमति से ही पंचों का चुनाव किया जाता है। पंचायत आज की अदालतों की तरह केवल अपराधी का निर्णय करके उसे दंड देने के लिए नहीं बैठती। पंचायतों का प्राथमिक उद्देश्य न्यायबुद्धि को जाग्रत् करना और अपराधी में पश्चाताप की भावना पैदा करके उसे सदाचरण की दिशा में ले जाना होता है।

पंचायतों के इस महत्तर उद्देश्य के कारण उसके निर्णयों की सर्वमान्यता रही है। यह माना जाता है कि पंचायत में देवता का वास है और उसके निर्णय की अवहेलना करना अनिष्ट को न्योता देना है। पंचायत जब न्याय करने के लिए बैठती है तो मंत्रोच्चार किया जाता है और पंचों पर गंगाजल छिड़का जाता है, ताकि वे शुद्धचित्त होकर न्याय करें। अगर कोई पक्ष एक पंचायत के निर्णय से संतुष्ट न हो तो वह उससे ऊपर की पंचायत के पास जा सकता है और अंतिम निर्णय सर्वखाप पंचायत के अधीन होता है।

पंचायतें सार्वजनिक हित के कार्य करने में सबसे आगे रही हैं। भिवानी क्षेत्र के एक बड़े गाँव झोझूकलाँ में इस पूरे क्षेत्र का सबसे पहला विद्यालय 1891 में स्थानीय पंचायत द्वारा शुरू किया गया था।

'हिन्द स्वराज' और सर्वजातीय पंचायत

गांधीजी ने हिंद स्वराज्य में पार्लियामेंट को वेश्या कहते हुए लोकतंत्र के आधुनिक ढाँचे में अपना अविश्वास व्यक्त किया था। उनसे स्वतंत्रता प्राप्ति के समय पार्लियामेंट के विकल्प के बारे में पूछा गया तो उन्होंने कहा कि सर्वजातीय पंचायत इसका अच्छा विकल्प हो सकती है। ऐसा लगता है कि कांग्रेस के पूरे नेतृत्व में गांधीजी को छोड़कर किसी और को जातीय पंचायतों की समझ नहीं थी। उनमें से कोई यह नहीं जानता था कि भारत सदा से पंचायतों द्वारा ही शासित रहा है। सर्वखाप पंचायत के अभिलेखों में लिखा है कि पंचायती शासन ब्रह्माजी के पुत्र मनु महाराज का बनाया हुआ विधान है और श्री रामचंद्रजी से लगाकर महाराजा युधिष्ठिर तक सब प्रतापी और न्यायशील राजा पंचायत के अनुसार ही शासन करते थे। भारत में धर्म के ही राज्य की प्रतिष्ठा रही है। राजा, आचार्य और पंचायतें इसी धर्म शासन का अंग हैं और समयानुसार एक-दूसरे के सहायक होकर धर्म संस्थापन का कार्य करते आए हैं। ■

(लेखक चिंतक और वरिष्ठ पत्रकार हैं।)

मनोगत

मान्यवर महोदय

'मंगल विमर्श' का जुलाई, 2015 अंक आपके हाथों में सौंपते हुए सुखद अनुभूति हो रही है।

7 जून, 2015 को 'मंगल सृष्टि' कार्यालय में जब 'मंगल विमर्श' के अप्रैल 2015 के अंक के लोकार्पण अवसर पर पत्रिका के पाठकों, लेखकों, सहयोगियों और शुभचिंतकों से सामूहिक रूप से पहली बार मिलने का मौका मिला, तब इस बात का बहुत गहराई से अहसास हुआ कि आप सब इस पत्रिका से किस प्रकार स्नेह-बंधन में बँधे हुए हैं और आपको इससे कितनी अपेक्षाएँ हैं। इस अवसर पर आप सबकी अपेक्षाओं को वरिष्ठ पत्रकार व चिंतक श्री बनवारीजी, भारत के पूर्व राजदूत श्री ओ.पी. गुप्ताजी व 'पंजाब केसरी' के एक्जीक्यूटिव डायरेक्टर श्री आदित्य चोपड़ाजी ने जिस प्रकार प्रस्तुत किया, वे विचार मार्गदर्शक के रूप में सदैव हमारे सम्मुख रहेंगे। इस समय हमारा समाज संक्रमण के जिस दौर से गुजर रहा है, उस स्थिति में मैं आप सबके समर्थन व सहयोग के बल पर आश्वस्त करता हूँ कि 'मंगल विमर्श' पत्रकारिता के उच्च मानदंडों का निर्वाह करते हुए आपकी और समाज की अपेक्षाओं को पूर्ण करती रहेगी।

लोकार्पण के अवसर पर व्यक्तिगत चर्चा में भी आपने जो अमूल्य सुझाव दिए थे, उन्हें ध्यान में रखते हुए जुलाई का अंक तैयार कर आपके हाथों में सौंप रहे हैं। आपसे अनुरोध है कि इस अंक के बारे में अपनी बेबाक टिप्पणी हमें अवश्य भेजें, जिससे अगले अंकों में और सुधार किए जा सकें। पत्रिका के ये अंक प्रारंभिक अंक होने

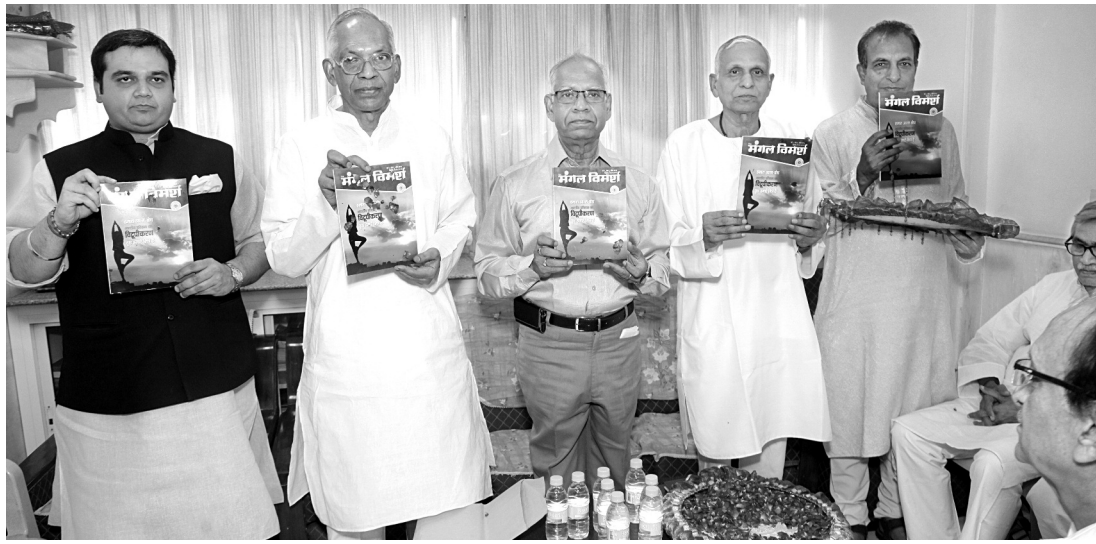

के कारण इनके प्रकाशन में कुछ विलंब हो रहा है, जिससे हुई असुविधा के लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं। आशा है, कि आगामी अंक समय पर आपके हाथों में सौंप सकेंगे।

विद्वान् लेखक किसी भी पत्रिका के वैचारिक मेरुदंड होने के नाते महत्त्वपूर्ण थाती होते हैं। माननीय लेखकों से अनुरोध है कि वे अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख अपेक्षित अंक के प्रकाशन से लगभग तीन माह पूर्व अवश्य भेज दें (जनवरी 2016 अंक में प्रकाशन के लिए लेख अक्तूबर-2015 तक भेज दें), जिससे समय पर उनका प्रकाशन संभव हो सके। लेख यदि चाणक्य फॉण्ट में टाईप किए हुए और इ-मेल से भेजें तो प्रकाशन की दृष्टि से उपयुक्त रहता है। कृपया लेख पर अपना पूरा नाम, पता, फोन नंबर और इ-मेल पता अवश्य लिखें, जिसे आपसे सपर्क करने में सुविधा हो सके। लेख के साथ अपना संक्षिप्त परिचय तथा फोटो अवश्य भेजें जिससे उसे पत्रिका में आवश्यकतानुसार प्रकाशित करने में सुविधा हो।

मान्यवर, किसी भी पत्रिका की सफलता के लिए आर्थिक सहयोग व वार्षिक पाठक सदस्यता बहुत ही महत्त्वपूर्ण पक्ष है, जिसकी उपेक्षा कर कोई भी पत्रिका अपना उद्देश्य और पाठकों की अपेक्षाओं को पूरा कर सकने में समर्थ नहीं हो सकती। 'मंगल विमर्श' के लिए जिन शुभ चिंतकों से पहले दिन से ही आर्थिक सहयोग अब तक मिला है, हम उनके बहुत आभारी हैं। ऐसे शुभ चिंतकों की सूची इस अंक में प्रकाशित कर रहे हैं। आशा है, भविष्य में भी इसी प्रकार आपका सहयोग मिलता रहेगा। पत्रिका के प्रचार-प्रसार में स्थायी पाठक वृंद बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। स्थायी पाठकों की संख्या वृद्धि की दृष्टि से पाँच वर्ष और दस वर्ष के लिए सदस्य बनाने का निर्णय लिया गया है। पाँच वर्ष के लिए शुल्क एक हजार रुपए और दस वर्ष के लिए दो हजार रुपए निर्धारित किया गया है। आपसे अनुरोध है कि पाँच/दस वर्ष के

लिए स्वयं पाठक बनें और अपने मित्रों को भी पाठक बनने के लिए प्रेरित करें। **पाठक सदस्यता प्रपत्र इस अंक के साथ संलग्न है।** इसे भरकर और अपेक्षित राशि का ड्रॉफ्ट प्रपत्र के साथ संलग्न कर मंगल विमर्श कार्यालय में भेजें।

जिन पाठकों/लेखकों/शुभचिंतकों के पत्र-व्यवहार का पता बदल गया है वे, कृपया संदर्भ संख्या का उल्लेख करते हुए अपने नए पते की सूचना तत्काल इस कार्यालय को दें, जिससे उन्हें पत्रिका निर्बाध रूप से प्राप्त होती रहे। आप सबका स्नेह ही इस पत्रिका का संबल है। पत्रिका के लिए आरती विजय स्वामी द्वारा उपलब्ध कराए गए फोटो के लिए उनका आभार। इसके साथ ही आप सब के सहयोग के लिए आपका बहुत-बहुत धन्यवाद।

स्नेहाकांक्षी
आदर्श गुप्ता
प्रबंध संपादक

सहयोगी वृंद

1.बसंत प्रोजेक्ट्स लिमिटेड
जी 3 अग्रवाल कॉर्पोरेट टॉवर, प्लॉट नं. 23,
राजेंद्र प्लेस , दिल्ली-110008

2. ग्लोब कैपिटल मार्केट लिमिटेड
609, अंसल भवन, 16 के जी मार्ग,
कनॉट प्लेस, नई दिल्ली-110001

3. एच.आर. एजुकेशन एंड चैरिटेबल फाउंडेशन
120, सेक्टर-14, सोनीपत, हरियाणा-131001

4. मंगत राम दाल मिल्स प्राइवेट लिमिटेड
एम -16, फेज-1, बादली औद्योगिक एस्टेट, दिल्ली-110042

5. मनसा देवी राइस मिल्स
एन आई एस एस आई एन जी, करनाल, हरियाणा-132024

6. मैप्सको बिल्डर्स प्राइवेट लिमिटेड
52, नॉर्थ एवेन्यू, पंजाबी बाग (पश्चिम), नई दिल्ली-110026

7. सत्याकिरण हेल्थ केयर प्राइवेट लिमिटेड
मॉडल टाउन, सोनीपत, हरियाणा-131001

8. सनस्टार ओवरसीज लिमिटेड
40 के एम स्टोन, जी टी रोड, करनाल,
सोनीपत, हरियाणा-131021

9. श्री आशुतोष गर्ग
गार्जियन लाइफकेयर प्राइवेट लिमिटेड,
गार्जियन हाउस, प्लॉट नं. 55, सेक्टर-37, उद्योग विहार,
फेज- VI, गुड़गांव, हरियाणा-122001

10. श्री अवधेश गुप्ता
133, अंबिका विहार, पश्चिम विहार,
नई दिल्ली-110087

11. श्री धर्मवीर सिंघल
जी बी-403, वेलकम अपार्टमेंट, सेक्टर-9,
रोहिणी, दिल्ली-110085

12. श्री कुमार प्रिंस
38, न्यू ग्रेन मार्केट, कुरुक्षेत्र, हरियाणा-136118

13. श्री मुकेश गुप्ता
जनता बुक डिपो, 26 बंगाली मार्केट, नई दिल्ली-110001

14. श्री प्रवीण ठाकुर
बी-24, फ्रेंडस टावर, सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली-110085

15. श्री संजय कंसल
1682/8, विष्णु कॉलोनी, कुरुक्षेत्र, हरियाणा-136118

16. श्री सत नारायण सिंगला
38, न्यू ग्रेन मार्केट, कुरुक्षेत्र, हरियाणा-136118

17. श्री तिलक चांदना
जी-602, साई बाबा अपार्टमेंट, सेक्टर-9,
रोहिणी, दिल्ली- 110085

18. श्री वेद प्रकाश गुप्ता
फ्लैट नं 35-36, पॉकेट बी-8,
सेक्टर-4, रोहिणी,
दिल्ली- 110085

19. श्री विनीत मित्तल एवं श्री अभिनव मयंक
वेलस्पन एनर्जी प्राइवेट लिमिटेड, पी.टी.आई. बिल्डिंग,
3 फ्लोर, 4 संसद मार्ग, नई दिल्ली-110001

मंगल विमर्श
सदस्यता -प्रपत्र

मंगल विमर्श **त्रैमासिक पत्रिका**

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंगलाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

सदस्यता -शुल्क

5 वर्षों के लिए
₹1000 मात्र

10 वर्षों के लिए
₹2000 मात्र

पत्रिका सदस्यता शुल्क हेतु
मंगल सृष्टि (Mangal Srushti)
के नाम चैक/ड्राफ्ट सी-84, अहिंसा विहार,
सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085 पर भेजें।
फोन नं. +91-9811166215,
+91-11-27565018

मंगल विमर्श की..... वर्षों की सदस्यता हेतु.....

रुपये का ड्राफ्ट/चैक क्रं. ..... दिनांक.....

बैंक..... भेज रहे हैं,

कृपया..... वार्षिक सदस्य बनाने का कष्ट करें।

नाम.....

पता.....

.....

..... पिनकोड .....

फोन :..... मोबाइल:.....

इ-मेल.....

इ-मेल mangalvimarsh@gmail.com **वेब साइट** www.mangalvimarsh.in

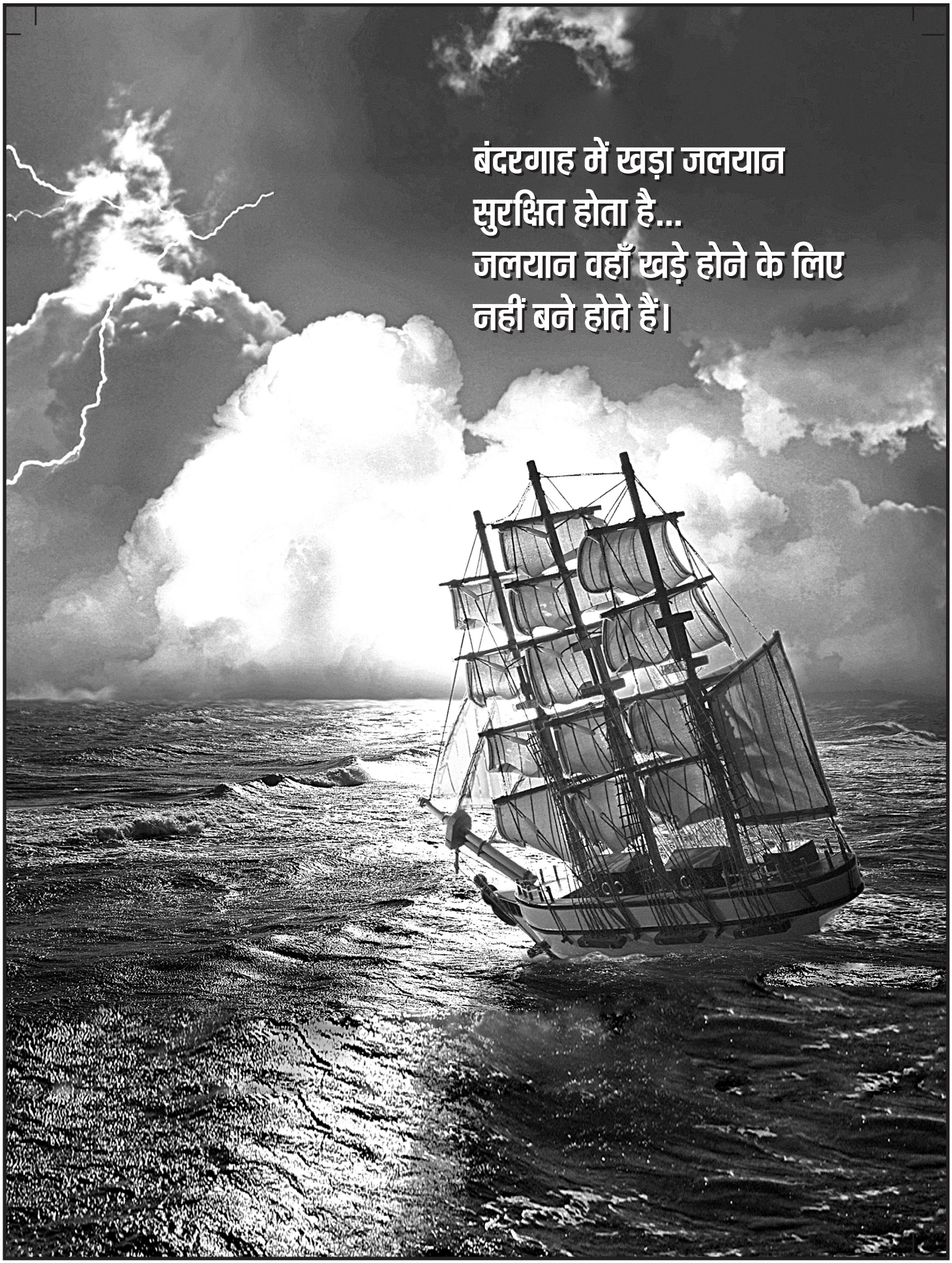
बंदरगाह में खड़ा जलयान
सुरक्षित होता है...
जलयान वहाँ खड़े होने के लिए
नहीं बने होते हैं।